अक़ामते दीन फ़र्ज़ है

लेखक :

मौलाना सय्यद अहमद ऊरुज क़ादरी रह०

अनुवाद : डॉ० रफ़ीक़ अहमद

بسم الله الرحمن الرحيم

(अक़ामते दीन का मतलब)

अक़ामते दीन के फ़र्ज़ व वाजिब होने की दलीलें पेश करने से पहले ज़रुरी है कि इसका मतलब और मायने स्पष्ट कर दिया जाए।

''अक़ामते दीन'' में दीन से तात्पर्य वह दीने हक़ है जिसे अल्लाह रब्बुलआलिमीन अपने तमाम अम्बिया अलैह० के ज़रिये मुख़्तलिफ़ ज़मानों और मुख़्तलिफ़ मुल्कों में भेजता रहा है और जिसे आख़री और मुकम्मल सूरत में सारे इन्सानों की हिदायत के लिये आख़री नबी हज़रत मोहम्मद सल्ल० के ज़रिये नाज़िल फ़रमाया और जो अब दुनिया में एक ही प्रमाणित, सुरक्षित अल्लाह के नज़दीक पसन्दीदा दीन है और जिसका नाम इस्लाम है।

यह दीन इन्सान के ज़ाहिरी और आन्तरिक और उसकी

ज़िन्दगी के सारे व्यक्तिगत और सामूहिक गोशों को घेरे हुए है। अक़ीदे, इबादात और अख़लाक़ से लेकर आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक तक यानी इन्सानी ज़िन्दगी का कोई एक हिस्सा भी ऐसा नही है जो उसके दायरे से ख़ारिज हो।

यह दीन जिस तरह अल्लाह की खुशी और आख़िरत की कामयाबी की ज़मानत देता है उसी तरह दुनयवी मसलों के समुचित हल के लिये बेहतरीन जीवन व्यवस्था भी है। दुनिया को व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन का सही और शुद्ध निर्माण सिर्फ़ उसी के क़ियाम से मुम्किन है।

इस दीन को क़ायम करने का मतलब यह है कि किसी कांट-छांट के बग़ैर इस पूरे दीन की खुलूस और इमानदारी से पैरवी की जाए और हर तरह से केन्द्रित होकर की जाए और इन्सानी ज़िन्दगी के व्यक्तिगत और सामूहिक सभी गोशों में इस तरह जारी और नाफ़िज़ किया जाए कि फ़र्द की तरक्की समाज का निर्माण और राज्य का गठन सब कुछ इसी दीन के मुताबिक़ हो।

जमाअते इस्लामी हिन्द के संविधान की इस तहरीर में दीन और अक़ामते दीन का जो मतलब बयान किया गया है उसका हासिल यह है कि दीने इस्लाम को उसके सारे आदेशों और नियमों और उसकी सारी शिक्षाओं और निर्देशों के साथ पूरी इन्सानी ज़िन्दगी का दीन बनाया जाए। ज़िन्दगी को कुछ हिस्सों और कुछ ख़ानों में बांट करके कुछ में इस्लाम की पैरवी करना और कुछ में ग़ैर इस्लाम की पैरवी करना बिल्कुल ग़लत है, जिस तरह मस्जिद

में इस्लाम के आदेशों पर अमल करना ज़रुरी है उसी तरह असेम्बली में भी उसके नियमों और क़ानूनों पर अमल करना ज़रुरी है। पार्लियामेन्ट में बैठ कर इस्लाम के ख़िलाफ़ क़ानून बनाना या अपने मर्ज़ी से गढ़े हुए आदेश पारित करना, अल्लाह से बग़ावत करना है, जो इस पूरी कायनात का अकेला बादशाह और हाकिम है और जब तक यह बग़ावत ख़त्म और अल्लाह का कलिमा बुलन्द न हो अक़ामते दीन मुकम्मल नहीं हो सकता।

अक़ामते दीन का मिसाली नमूना

इस दीन की अक़ामत का मिसाली और बेहतरीन नमूना वह है जिसे हज़रत मोहम्मद सल्ल० और आदरणीय खलीफ़ाओं ने क़ायम किया।

इस मिसाली नमूने के लिये ख़िलाफ़ते राशिदा (नबी सल्ल० के आर्दश जीवन के अनुसार ख़िलाफ़त), हुकूमते इलाहिया और इस्लामी हुकूमत की इस्तलाहें (Terms) इस्तेमाल की जाती हैं। नबी सल्ल० और ख़ुलफ़ाए राशिदीन ने जो हुकूमत क़ायम की थी उसमें बग़ैर किसी फर्क के पूरे दीने इस्लाम की मुख़्लिसाना पैरवी की जाती थी और व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के सारे भागों में उसे इस तरह जारी व नाफ़िज़ कर दिया गया था कि व्यक्ति की तरक्की समाज का निर्माण और राज्य का गठन ठीक ठीक उसी दीन के मुताबिक़ थी। उस हुकूमत में जाकर हर व्यक्ति अपनी खुली आँखों से यह देख सकता था कि इस्लामी हुकूमत और क़ुरआनी समाज कैसा होता है और ‘‘अक़ामते दीन’’ का अर्थ क्या है, जिस तरह एक खड़े हुए व्यक्ति के क़द व क़ामत, जिस्मानी

बनावट, रंग व रुप और चेहरे–मोहरे को पहचानने के लिये दो आँखें काफ़ी हैं, इसी तरह अक़ामते दीन का सही मतलब जानने के लिये रिसालत काल और ख़िलाफ़त काल का मिसाली नमूना काफ़ी है जिसकी बुलन्द क़ामती और उसके सारे रंग व रुप इतिहास के पन्नों ने सुरक्षित कर लिये हैं। यह मिसाली नमूना सिर्फ़ नमूना ही नहीं है बल्कि फ़रीज़ा–ए–अक़ामत दीन की एक रोशन दलील है।

मुसलमानों के पतन और गिरावट का नतीजा

सैंकड़ों साल से मुसलमान जिस गिरावट और पतन के शिकार हैं, उसका नतीजा यह है कि आज मुसलमान भी आम तौर से दीन इस्लाम को उसी तरह का एक धर्म समझते हैं, जिस तरह के और दूसरे धर्म पाये जा रहे हैं। उन्होंने भी अपने धर्म को नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज, निकाह, तलाक़, विरासत और इसी तरह के कुछ मसलों तक सीमित कर दिया है। उनके नज़दीक उपदेश और नसीहत की मजलिसों, मीलाद की महफ़िलों और कलिमा व नमाज़ की तालीम से दीन व ईमान के तमाम तक़ाज़े पूरे हो जाते हैं, बाक़ी रही सियासत व हुकूमत तो उन्होंने उसे दुनियादारी के ख़ाने में डालकर उसे दुनियादार लोगों के लिये छोड दिया है। इसमें कुसूर मुसलमान अवाम का नहीं बल्कि उन ख़ास लोगों का है, जिन्होंने उनके दिमाग़ों में दीने इस्लाम का यह सीमित अर्थ बताया और जमाया है। अल्लाह का शुक्र है कि अब जमाअत

इस्लामी और इस तरह की दूसरी जमाअतों की मेहनत और कोशिशों से न सिर्फ़ हिन्दुस्तान में बल्कि दूसरे मुल्कों में भी दीन इस्लाम के बारे में यह बेबुनियाद ख़्याल ख़त्म होता जा रहा है और मुसलमान उसे पूरी ज़िन्दगी का मुकम्मल निज़ाम और क़ानून समझने लगे हैं। उन्हें कुरआन मजीद की आयातों और रसूल मक़बूल सल्ल० की हदीसों के हवाले से बताया जा रहा है कि उनकी ज़िन्दगी का मक़सद और उनका मिशन क्या है और किस चीज़ को उनकी सारी कोशिशों और जद्दो जेहद का केन्द्र होना चाहिये।

क़ुरआन मजीद की दलीलें

"अक़ामते दीन" मुसलमानों पर फ़र्ज़ है और उसके फ़र्ज़ व वाजिब होने की दलीलों से क़ुरआन भरा हुआ है। हम उसकी दलीलें संक्षेप में कुछ बिन्दुओं के तहत पेश करेगें।

१. हज़रत आदम अलै० को पैदा करना और उन्हें दुनिया में भेजने का मक़सद।

२. हज़रत मोहम्मदुर्रसूलुल्लाह सल्ल० की आमद और आपकी नुबुवत व रिसालत का मक़सद।

३. क़ुरआन और उसके पहले की आसमानी किताबें नाज़िल करने का मक़सद।

४. अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के ख़िलाफ़ हुक्म चलाने और फ़ैसला करने वाले काफ़िर, ज़ालिम

और फ़ासिक़ हैं।

५. चोर का हाथ काटने और ज़ानी (व्यभिचारी) को कोड़े लगाने का हुक्म।

६. अक़ामते दीन के लफ़्ज़ के साथ क़ुरआन का स्पष्ट आदेश।

७. दीने इस्लाम को ग़ालिब करने की जद्दो जहद करने वालों से मदद का वादा।

८. ग़ल्बाये दीन की जद्दो जहद में माल ख़र्च न करने वालों और जान चुराने वालों का हुक्म।

९. इन्सान और जिन्नात को पैदा करने की ग़र्ज़।

१०. उम्मते मुस्लिमा का मिशन और उसका मक़सदे ज़िन्दगी।

इन दस बिन्दुओं में से हर बिन्दु इस बात की दलील है कि दीने इस्लाम को ग़ालिब करना, उसको क़ायम करना और क़ुरआन मजीद के सारे क़ानूनों को नाफ़िज़ करना मुसलमानों की ज़िम्मेदारी और उनकी ज़िन्दगी का सबसे अहम फ़रीज़ा है।

पहली दलील

हमें सबसे पहले यह जानना चाहिये कि हज़रत आदम अलै० को पैदा करने का मक़सद क्या था?उनकी हैसियत क्या थी और अल्लाह तआला ने उन्हें दुनिया में किस लिये भेजा था?हम सब जानते हैं कि वह इस दुनिया में सबसे पहले इन्सान ही नहीं बल्कि अल्लाह के सबसे पहले पैग़म्बर भी थे, इसलिये उन्हें दुनिया

में भेजने का जो मक़सद होगा उसके अहम तरीन फ़रीज़ाये ज़िन्दगी होने में शक की कोई गुन्जाइश नहीं होगी।

हज़रत आदम अलै० को पैदा करने का मक़सद क्या था, उनकी हैसियत क्या थी और उन्हें किस हिदायत के साथ दुनिया में भेजा गया था उसका तफ़सीली बयान सूरह बक़रा की आयत ३० से ३९ तक फैला हुआ है। वह आयतें स्पष्ट शब्दों में यह बताती हैं कि अल्लाह तआला ने उन्हें अपनी ख़िलाफ़त व नियाबत के महान काम को अन्जाम देने के लिये दुनिया में भेजा था और यही उनकी पैदाइश का मक़सद था। इस दुनिया में उनकी हैसियत अल्लाह के ख़लीफ़ा के और नायब की थी। आयते ख़िलाफ़त की व्याख्या करते हुए मौलाना सदरउद्दीन इस्लाही रह० लिखते हैं।

> ''ख़लीफ़ा उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी के मुल्क में उसके सौंपे हुए अधिकारों को उसके नायब (क़ायम मुकाम) की हैसियत से इस्तेमाल करे। ख़लीफ़ा मालिक नहीं होता बल्कि असल मालिक का नायब होता है। उसके इख़्तियारात खुद के नहीं होते बल्कि मालिक के दिये हुये होते हैं। वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करने का हक़ नहीं रखता बल्कि उसका का काम मालिक के मन्शा को पूरा करना होता है। अगर वह खुद अपने को मालिक समझ बैठे और दिये गये इख़्तियारात को मन माने तरीक़े से इस्तेमाल करने लगे या असल मालिक के सिवा किसी और को मालिक मान करके उसकी मन्शा की पैरवी और उसके आदेशों

का पालन करने लगे तो यह सब नमक हरामी, ग़द्दारी और बग़ावत के काम होगें।

यह आयत बताती है कि इन्सान इस ज़मीन पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा है। यह ख़िलाफ़त का यह पद उसके महानता के ताज की वह चमकदार मोती है जो किसी भी मख़लूक़ को नहीं दिया गया। इसीलिये अल्लाह तआला ने अपनी नेमतों के बयान में इस बेनज़ीर नेमत का ज़िक्र भी एक ख़ास तरह से फ़रमाया। फिर उसकी जनाब से फ़रिश्तों के सामने आदम की पैदाइश से पहले ही उसके इरादे का ज़िक्र और वह भी उसी मन्सबे ख़िलाफ़त ही का नाम लेकर यह ग़ैर मामूली अहमियत रखता है, शायद इन्सान की अज़मत का इससे ऊँचा तसव्वुर और कोई नहीं हो सकता। अब इन्सान की जिस तरह यह नासमझी और अपनी बेइज़्ज़ती है कि वह इन मख़लूक़ात के आगे अपना सर झुका दे, जिन पर उसको नया आक़ाई और हुक्मरानी का मुक़ाम बख़्शा गया है। इसी तरह उसकी यह ख़ुद फ़रेबी, ख़ियानत और ग़द्दारी होगी कि वह अपने असल मालिक की मर्ज़ी से आज़ाद होकर मनमाने तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करने लगे।

इस सिलसिले में इन्सान की हक़ीक़त और कायनात में उसकी असल हक़ीक़त ठीक-ठीक बयान कर दी गयी

है और नोऐ इन्सानी (मानवजाति) की तारीख़ का वह अध्याय पेश कर दिया गया है, जिसके मालूम करने का कोई दूसरा ज़रिया इन्सान को हासिल नहीं है। इस अध्याय से जो अहम नतीजे हासिल होते हैं वह उन नतीजों से बहुत ज़्यादा क़ीमती और कामयाब हैं जिन्हें ज़मीन की तहों से हड्डियाँ निकाल कर और उन्हें क़यास से रब्त देकर अख़ज़ करने की कोशिश की जाती है।"(१)

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी रह० अपनी तफ़सीर क़ुरआन में लिखते हैंः

"और अल्लाह का ख़लीफ़ा वह है जो ज़मीन पर अल्लाह की शरीअत की हुकूमत क़ायम करे"।(२)

हमारे अगले (मुफस्सिरीन) टीकाकारों ने इसके बारे में जो कुछ लिखा है, हम यहाँ सिर्फ़ उसका तर्जुमा नक़ल करते हैं। इमाम बग़वी अपनी तफ़सीर मआलिमुल तनज़ील में लिखते हैंः

"और सही बात यह है कि हज़रत आदम अलै० अल्लाह की ज़मीन पर उसके आदेशों को स्थापित करने और उसके फ़ैसलों को लागू करने के लिये अल्लाह के ख़लीफ़ा थे"।

---

(१) तैसीरुल कुरआन, हाशिया ४१, सफ़ा ७१, ७२

(२) मौलाना अब्दुलमाजिद दरियाबादी तफ़सीर माजदी, जिल्द १, सफ़ा ६५, नाशिर मजलिस तहक़ीक़ात व नशरियात इस्लाम लखनऊ

तफ़सीर ख़ाज़िन में उसकी पुष्टि इन शब्दों में की गयी है।

“और सही कथन यह कि हज़रत आदम अलै० को ख़लीफ़ा इसलिये कहा गया कि वह अल्लाह की ज़मीन में उसके क़ानून की अक़ामत करने और उसके फ़ैसलों को नाफ़िज़ करने के लिये अल्लाह के ख़लीफ़ा थे”।

“ख़लीफ़ा” की तफ़सीर जलालैन में यह हैः

“वह ज़मीन पर मेरे एहकाम को नाफ़िज़ करने में मेरी नियाबत (प्रतिनिधित्व) करेगा और वह ख़लीफ़ा आदम हैं।”

तफ़सीर बेज़ावी में इस तरह हैः

“और ख़लीफ़ा उसको कहते हैं जो दूसरे का क़ायम मुक़ाम और उसका नायब हो और उससे तात्पर्य आदम अलै० हैं इसलिये कि वह ज़मीन में अल्लाह के ख़लीफ़ा थे और इसी तरह हर नबी अल्लाह के ख़लीफ़ा थे। अल्लाह ने सारे नबियों को ज़मीन की आबादी, लोगों के मामलात की समझ, उनके नुफ़ूस की तकमील और उन पर एहकामे इलाही के निफ़ाज़ के लिये अपना ख़लीफ़ा बनाया था। इसलिय नहीं कि अल्लाह किसी नायब का मोहताज है बल्कि इसलिये कि जिन लोगों पर उसने अपना नायब नियुक्त किया

वह सीधे तौर पर उसके हुक्म और उसके फ़ैज़ को क़ुबूल करने की योग्यता नहीं रखते थे।''

इसी तरह की तहरीर ''रुहुलमआनी'' में भी है, जिसके इब्तेदाई अल्फाज़ यह हैं।

''आदम ज़मीन में अल्लाह के ख़लीफ़ा थे और इसी तरह तमाम अंबिया अल्लाह के ख़लीफ़ा थे।''

मुफ़स्सिरीन-ए-कराम की इन तहरीरों से पूरी वज़ाहत के साथ मालूम हुआ कि न सिर्फ़ हज़रत आदम अलै० बल्कि सारे अम्बियाए कराम अलै० को जो ज़मीन की ख़िलाफ़त अता की गयी थी उसका मक़सद यह थाः

''ज़मीन की आबादी, लोगों के लिये सियासत के अन्जाम देही (यानी उनके सारे मामलात का इन्तेज़ाम और प्रबन्धन), उनके नुफ़ूस की तकमील, अल्लाह के शरअी फ़ैसलों का निफ़ाज़ (क्रियानवयन) और एहकामे इलाही की स्थापना।''

हमने ऊपर जमाअते इस्लामी हिन्द के संविधान के हवाले से ''अक़ामते दीन'' का जो मतलब व मफ़हूम वाज़ेह किया है वह इसके सिवा और क्या है? मुफ़स्सिरीने कराम ने इन चार बिन्दुओं में जो कुछ फ़रमाया है उससे इन्सानी ज़िन्दगी का कौन सा भाग बाहर है? मुसलमान पर अक़ामते दीन के फ़र्ज़ व वाजिब होने की इससे बड़ी दलील और क्या होगी? जो काम इन्सान की तखलीक़

की गरज़ और उसका मक़सदे वजूद हो, वह भी उस पर फ़र्ज़ न होगा तो आख़िर कौन सा काम उस पर फ़र्ज़ होगा?

सूरह बक़रा की आयत ३० ‘‘वइज़ क़ाला रब्बुका लिल्मलाइकती इन्नी जाइलुन फ़िल अर्ज़े ख़लीफ़तन’’ ख़लीफ़ा के अलावा ‘‘ख़लीफ़ा’’ का लफ़्ज़ एक जगह और क़ुरआन में आया है:

> ‘‘ऐ दाउद! हमने ज़मीन में तुम्हें अपना नायब (प्रतिनिधी) बनाया है लिहाज़ा तुम लोगों में हक़ व इन्साफ़ के साथ हुकूमत करो और अपनी ख़्वाहिश की पैरवी न करो, वरना वह तुम्हें अल्लाह के रास्ते से भटका देगी।’’ (साद २६)

इस आयत में अल्लाह ने वज़ाहत के साथ हज़रत दाउद अलै० को अपना ख़लीफ़ा और नायब कहा है और उसका मक़सद भी यही बयान किया है कि वह अल्लाह के उतारे हुए क़ानूने इन्साफ के मुताबिक़ हुकूमत करें और मुक़दमात का फ़ैसला सुनायें। अगर्चे तख़लीक़ के मक़सद के लिहाज़ से तो हर इन्सान ख़ुदा का ख़लीफ़ा है। लेकिन इस महान की सच्ची फ़ितरत यह तक़ाज़ा करती है कि यह मन्सब शर्तों के साथ निर्धारित हो, बग़ैर किसी शर्त के न हो। उसके योग्य और जायज़ हक़दार वही लोग हों जो ख़ुदा की ख़िलाफ़त के हक़ को वफ़ादारी के साथ अदा करें और जो लोग इस हक़ को अदा न करें वह ख़ुदा के ख़लीफ़ा नहीं बल्कि उसके बाग़ी और ग़द्दार है। जब मोमिन बन्दे ही ख़िलाफ़ते

इलाही के पात्र हैं तो उनके मन्सब का यह सही तक़ाज़ा है कि वह दूसरे गिरे हुए इन्सानों को बग़ावत की पस्ती से उठा कर उन्हें ख़िलाफ़त इलाही की बुलन्दी तक पहुँचाने की कोशिश करें। ऊपर की तफ़सील से यह बात ख़ुद ज़ाहिर हो रही है कि अल्लाह तआला ने अपने आज्ञाकारी बन्दों को जो ख़िदमत सुपूर्द की है वह एक ऐसे निज़ाम और व्यवस्था की मांग करता है जिसकी बुनियाद नियाबते इलाही के नज़रिये पर रखी गयी हो। क्योंकि उसके बग़ैर यह ख़िदमत पूरी तरह अन्जाम नहीं दी जा सकती।

दूसरी दलील

सय्यदना मोहम्मद सल्ल० का आगमन भी इसीलिये हुआ था कि वह दीने हक़ को तमाम झूठे दीनों पर ग़ालिब कर दें। उसकी सराहत सूरह तौबा आयत ३३ सूरह सफ़ आयत ६, और सूरह फ़तह आयत २८ में है। मैं यहाँ सूरह फ़तह की आयत नक़ल करता हूँः

> ‘‘वही है जिसने अपने रसूल को हिदायत और दीने हक़ देकर भेजा ताकि वह उसे तमाम दीनों पर ग़ालिब करे और (इस हक़ीक़त पर) अल्लाह की गवाही काफ़ी है।’’ (अल फ़तहः २८)

सूरह तौबा और सूरह सफ़ की आयतों का आख़री टुकड़ा ‘‘व-क-फ़ा बिल्लाही शहीदा’’ है। इन दोनो में यह बात कही गयी है कि दीने हक़ का ग़ल्बा मुश्रिकों और काफ़िरों को चाहे कितना ही

नागवार क्यों न हो, हमने अपने रसूल को इसी मक़सद से भेजा है, और सूरह फ़तह का आख़िरी टुकड़ा यह बताता है मोहम्मद सल्ल० के आमद के मक़सद पर अल्लाह की गवाही काफ़ी है। अब अगर तमाम दुनिया मिल कर भी यह कहे कि मोहम्मद सल्ल० के आगमन का मक़सद यह नहीं था तो उसकी बात क़ाबिल क़ुबूल न होगी। सूरह तौबा आयत ३३ के तहत मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी रह० ने लिखा हैः

> ‘‘दीन का लफ़्ज़ जैसा कि हम पहले भी बयान कर चुके हैं, अरबी ज़बान में उस निज़ामे ज़िन्दगी (जीवन व्यवस्था) या तरीक़े ज़िन्दगी के लिये इस्तेमाल होता है, जिस के क़ायम करने वाले को प्रमाण और मुताअ (जिसकी पैरवी लाज़िम हो) तसलीम करके उसकी पैरवी किया जाए। रसूल सल्ल० की आमद का मक़सद इस आयत में यह बताया गया है कि जिस हिदायत और दीने हक़ को वह ख़ुदा की तरफ़ से लाया है उसे दीन की नौइयत रखने वाले सारे तरीक़ों और निज़ामों पर ग़ालिब करदे। दूसरे अल्फ़ाज़ में रसूल सल्ल० की आमद कभी इस ग़र्ज़ के लिये नहीं हुयी कि जो निज़ामे ज़िन्दगी ले कर वह आया है वह किसी दूसरे निज़ामे ज़िन्दगी का ताबे और उसके अधीन होकर और उसकी दी हुई रिआयतों और गुन्जाइशों में सिमट कर रहे हैं बल्कि वह ज़मीन व आसमान के बादशाह का प्रतिनिधि बन कर आता है और अपने बादशाह के निज़ामे हक़

को ग़ालिब देखना चाहता है। अगर कोई दूसरा निज़ामे ज़िन्दगी दुनिया में रहे भी तो उसे ख़ुदाई निज़ाम की बख़्शी हुयी गुन्जाइशों में सिमट कर रहना चाहिये जैसा कि जिज़िया अदा करने की सूरत में ज़िम्मियों को निज़ामे ज़िन्दगी रहता है।''

(तफ़हीमुल .कुरआन जि० २, पेज १६०)

हुज़ूर सल्ल० के इस मक़सदे आमद को शाह वली उल्लाह मोहद्दिस देहलवी रज़ि० ने अपनी किताब ''हुज्जतुल्लाहिल बालेग़ा'' और ''इज़ालतुलख़िफ़ा'' में बार-बार कई मुक़ामात पर लिखा है। इस आयत का हवाला दिये बग़ैर भी लिखा है और यह आयत पेश करके भी लिखा है। एक जगह उन्होंने अल्लाह की यह सुन्नत पेश की है कि किस तरह वह बाग़ी और सरकश क़ौमों को पस्त और तबाह करता रहता है। इसी सिलसिले बयान में उन्होंने हुज़ूर सल्ल० के मक़सदे आमद और बातिल दीनों की मग़लूबियत पर इस तरह रोशनी डाली है:

''और वह ख़ास तरीक़ा और शक्ल आप के दीन को दूसरे दीनों पर ग़ालिब करना है। इस तरीक़े पर कि उन बातिल दीनों के समर्थकों और दाइयों को क़त्ल किया जाए, उनसे ख़िराज व जिज़िया वसूल किया जाए उनकी हुकूमत और ज़ोर को ख़त्म और उसको कमज़ोर और ज़लील किया जाए, और यह ख़ास तरीक़ा आपकी असल आमद के अन्दर दाख़िल और आप सल्ल० की

आमद इस ख़ास सूरत पर आधारित थी और यही मतलब है इस आयत का ‘‘वही है जिसने अपने रसूल को हिदायत और दीने हक़ के साथ भेजा ताकि उसको तमाम दीनों पर ग़ालिब कर दे चाहे यह मुश्रिकों को कितना ही नागवार हो। और यही मतलब है हुज़ूर सल्ल० की इस हदीसे कुदसी का कि मैंने तुमको इसलिये भेजा है कि तुम्हें आज़माऊँ और तुम्हारे ज़रिये दूसरे लोगों की आज़माइश करूँ।’’

(इज़ालतुलख़िफ़ा मक़सदे अव्वल स० ४५)

इसी आयत पर बहस करते हुए शाह साहब ने यह भी ज़िक्र किया है:

‘‘जान लेना चाहिये कि इस आयत की सही व्याख्या यह है कि हर ग़लबा जो दीने हक़ को हासिल हुआ वह सब का सब लियुज़हरेहु अलदीने कुल्ली में दाख़िल है और वह अज़ीमुश्शान ग़लबा जो किसरा व क़ैसर की हुकूमत को तबाह व बर्बाद कर देने की शक्ल में हासिल हुआ, पूरी शान के साथ इस कलिमे में दाख़िल है और वह बड़े दर्जे व मर्तबे वाले ख़लीफ़ा थे (रज़ि०) इन बुज़ुर्गों की कोशिशें और आप सल्ल० की आमद का मक़सद उसके अन्दर दाख़िल था।’’

(इज़ालतुलख़िफ़ा जि० १ स० २६)

बाज़ वह लोग जो ग़ल्बये दीने हक़ से मायूस हैं या उसकी जद्दो जहद से जान बचाना चाहते हैं, इस आयत के बारे में यह कहते हैं कि इसमें जो कुछ कहा गया है वह हुज़ुर सल्ल० के साथ ख़त्म हो गया। अब यह जद्दोजहद हमारे लिये लाज़िम नहीं हैं। उनकी इस ज़हनियत का जवाब भी शाह साहब की तहरीर में मौजूद है, वह लिखते हैं।

''अल्लाह तआला ने हिदायत और दीने हक़ आप सल्ल० पर नाज़िल फ़रमाया और आप सल्ल० ने सहाबाए कराम को उसकी तबलीग़ की। सहाबा ने आपके मक़सद व मन्शा को अच्छी तरह समझा और फिर उसे ताबिईन (सहाबा के बाद के लोग) तक पहुँचाया और इसी तरह ज़माना ब ज़माना वह मक़सद मुन्तक़िल होता चला आ रहा है इसलिये कि अल्लाह की मर्ज़ी सिर्फ यह न थी कि सिर्फ़ आप सल्ल० को तालीम दे दी जाए और न यह थी कि सुनने वाले मक़सदे तबलीग़ समझें या न समझें। आप सल्ल० मन्सबे तबलीग़ का फ़र्ज़ अदा कर दें, बल्कि मुराद दीने हक़ का ज़हूर और ग़लबा है। एक ज़माने के बाद दूसरे ज़माने में और फिर तीसरे में और इसी तरह)।''

(इज़ालतुलख़िफ़ा जि० १ स० ४६)

हज़रत शाह वली उल्लाह रह० ने अपने मशहूर किताब ''हुज्जतलुल्लहिल बालेग़ा'' में कई अध्यायों में और अलग-अलग

अन्दाज़ से बार–बार यह हक़ीक़त दोहराई है कि अल्लाह तआला अंबिया–ए–कराम को अक़ामते दीन ही के लिये भेजता रहा है और उसने सय्यदना मोहम्मद सल्ल० को भी इसीलिये भेजा था कि वह दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब करें। ''अबवाब अल ईमान'' की तम्हीद में वह लिखते हैं:

> ''जान लो कि नबी सल्ल० चूँकि तमाम मख़लूक़ की तरफ़ से भेजे गये है ताकि अपने दीन को तमाम दीनों पर ग़ालिब कर दें, इज़्ज़त वाले की इज़्ज़त के साथ और ज़लील की ज़िल्लत के साथ। इसलिये आपके दीन में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लोग दाख़िल हो गये। लिहाज़ा ज़रूरी हुआ कि मुसलमानों और ग़ैर मुसलिमों के दरम्यान फ़र्क किया जाए।''
>
> (हुज्जतलुल्लाहिल बालेग़ा, जि० १ स० १६२, मतबुआ मिस्र)

एक जगह वह जिहाद की ज़रूरत व फ़ज़ीलत पर रोशनी डालते हुए लिखते हैं:

> ''जान लो कि नबी सल्ल० ख़िलाफ़ते आम्मा (उमूमी खिलाफ़त) के साथ भेजे गये थे और आपके दीन का दूसरे तमाम दीनों पर ग़ालिब होना जिहाद और सामाने जिहाद की तैयारी के बग़ैर मुम्किन नहीं है तो जब वह जिहाद तर्क कर दें और बैलों की दुमों के पीछे लग जाऐं

वह सिर्फ़ खाने कमाने में मशग़ूल और जिहाद से ग़ाफ़िल हो जायें) तो ज़िल्लत उनको घेर लेगी और दूसरे दीन वाले उन पर ग़ालिब आ जायेगें।''

(हुज्जतलुल्लाहिल बालेग़ा जि० २ स० ७३)

हम मज़मून के लम्बे हो जाने के ख़ौफ़ से इस तरह की दूसरी तहरीरें नक़ल नहीं कर रहे हैं, जो तहरीरें नक़ल की गयी हैं उनसे भी स्पष्ट हो जाता है कि शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह० ने पूरे अज़्म और यक़ीन के साथ यह हक़ीक़त बयान की है कि नबी सल्ल० की आमद का मक़सद दीने हक़ का सारे दीनों पर ग़ालिब करना था। हम मुसलमानों के लिये अक़ामते दीन के फ़र्ज़ व वाजिब होने की यह सबसे बड़ी दलील है कि हम जिस रसूल की उम्मत हैं उनकी आमद का मक़सद ही अक़ामते दीन था।

तीसरी दलील

अल्लाह तआला अपने रसूलों को जिस हिदायत और दीने हक़ के साथ भेजा उसकी बुनियाद और स्रोत वह किताबें होती थीं जो उन पर नाज़िल की जाती थीं और दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब करने और उसे क़ायम करने का मतलब यह होता था कि अल्लाह तआला की इस किताबे बरहक़ को क़ायम और नाफ़िज़ किया जाये। इन किताबों के नाज़िल होने का मक़सद यह था कि इन्सान ने ज़ुल्म व ज़्यादती और अपनी ख़्वाहिशाते नफ़्स के तहत दीन में जो एख़्तलाफ़ात पैदा कर दिये हैं, उन्हें दूर किया जाए। उसने शिर्क और कुर्फ़ व गुनाहों का जो निज़ाम क़ायम कर

दिया है उसको ख़त्म करके नये तौर से तौहीद और ईमान व इताआत का निज़ाम क़ायम किया जाए और उसे अंधेरी वादियों से निकाल कर दीने हक़ की सीधी और रोशन रास्ते पर वापिस लाया जाए। इन किताबों की हैसियत सुल्ताने कायनात के आदेशों की थी जिन पर ईमान लाना और उन पर अमल करना रसूलों पर भी फ़र्ज़ था और उन लोगों पर भी जिन की हिदायत के लिये वह भेजे गये थे। रसूल आते रहे और किताबें उतरती रहीं यहाँ तक कि वह वक़्त आ गया कि अब अल्लाह का आख़िरी रसूल और नबी आये और उसकी आख़िरी किताब नाज़िल हो। अल्लाह के आख़िरी नबी और रसूल सय्यदना मोहम्मद सल्ल० हैं और उसकी आख़िरी किताब ' .क़ुरआन मजीद है। अब क़ियामत तक यही किताब हक़ व बातिल (सत्य-असत्य) के दरम्यान फ़र्क़ करने वाली कसौटी है और यही वह फ़ुरक़ान है, जिस के आदेश सारे इन्सानों के लिये फर्ज़ हैं। जब तौरैत नाज़िल हुई थी तो उसकी अक़ामत का नाम अक़ामते दीन था और जब इन्जील नाज़िल हुई थी तो उसकी अक़ामत का नाम भी अक़ामते दीन था और अब क़यामत तक क़ुरआन की अक़ामत का नाम भी अक़ामते दीन है। ख़ुद .कुरआन ने अहले किताब के बारे में कहा हैः

> अगर वह तौरैत व इन्जील और जो कुछ उन पर उनके रब की तरफ़ से नाज़िल हुआ है उसे क़ायम रखते तो रिज़्क़ उनके ऊपर से बरसता और नीचे से उबलता।''
>
> (अल माएदा : ६६)

इस आयत में तौरैत व इन्जील की अक़ामत का मतलब यह है कि अगर अहले किताब सच्चाई और इमानदारी के साथ उस दीन की पैरवी पर क़ायम रहते जो तौरैत व इन्जील और दूसरी आसमानी किताबों में है और उसे अपनी ज़िन्दगी का दस्तूर प्रणाली बनाये रहते तो इस दुनिया में भी रिज़्क़ हर तरफ़ से उन पर बरसता और उबलता। फिर इस सूरह में आगे आयत ६८ में अहले किताब को मुख़ातिब करके जो बात कही गयी है उस पर ग़ौर कीजिये कि सिर्फ़ उन्हीं के लिये नहीं बल्कि हमारे लिये भी कितनी अहम है:

> ''कह दो कि ऐ अहले किताब (यहूदी व ईसाई) तुम किसी राह पर नहीं हो यहाँ तक कि तुम तौरैत व इन्जील को क़ायम करो और उसको क़ायम करो, जो तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम पर नाज़िल हुआ है।''

बहुत से मुफ़स्सरीन (टीकाकारों) के नज़दीक ''वमा उनज़िला इलैकुम मिर्रब्बिकुम'' से तात्पर्य क़ुरआने अज़ीम है। इसका मतलब यह हुआ कि अहले किताब से जो बात कही गयी है वह यह है कि जब तक तुम तौरैत व इन्जील व क़ुरआन की अक़ामत न करो उस वक्त तक तुम दीनी व मज़हबी लिहाज़ से कुछ नहीं हो और तुम्हारी दीनी ज़िन्दगी बेमक़सद और बेकार है। खुली बात है कि तौरैत व इन्जील और उसके बाद जब क़ुरआन नाज़िल हुआ तो उस पर ईमान लाकर उसकी अक़ामत यानी उसके तमाम एहकाम की सच्ची पैरवी उन पर फ़र्ज़ है और इसी

फ़रीज़े को तर्क करने की वजह से उनकी दीनी ज़िन्दगी बेकार हो गयी है। अगर इन पर किताबुल्लाह की अक़ामत फ़र्ज़ न होती तो उन्हें ''तुम किसी राह पर नहीं हो'' कहना किसी तरह सही न होता। दूसरी दलीलों के अलावा यह आयत भी इस बात की मज़बूत दलील है कि जो शख़्स भी अल्लाह की किताब पर ईमान का दावेदार हो उस पर इस किताब की अक़ामत फ़र्ज़ है और जैसा कि ऊपर कहा गया, अब क़ियामत तक अक़ामते क़ुरआन ही का नाम अक़ामते दीन है।

चन्द और आयतें

सूरह अलमाएदा की इन दो आयतों में ख़िताब (सम्बोधन) अहले किताब से था, उनके अलावा उमूमी और कुल्ली अन्दाज़ में तमाम आसमानी किताबों के नाज़िल होने के मक़सद से सम्बंधित क़ुरआन मजीद में बीसियों आयतें मोजूद हैं। हम दो आयतें और उनका तर्जुमा यहाँ नक़ल करते हैं:

> ''शुरु में सारे इन्सान एक ही दीन व मिल्लत पर थे। (फिर उनके दरम्यान मतभेद पैदा हुआ) तब अल्लाह ने अपने नबी भेजे, जो खुशख़बरी और डरावा सुनाने वाले थे और उनके साथ किताबे बरहक़ नाज़िल की ताकि हक़ के बारे में उनके दरम्यान जो इख़्तेलाफ़ात पैदा हो गये थे उनका फ़ैसला करे। इख़्तेलाफ़ उन लोगों ने किया जिन्हें हक़ का इल्म दिया था। उन्होंने रौशन

हिदायत पा लेने के बाद महज़ इसलिये हक़ को छोड़ कर मुख़तलिफ़ तरीक़े निकाले कि वह आपस में ज़्यादती करना चाहते थे। पस जो लोग नबियों पर ईमान लाये उन्हें अल्लाह ने अपनी मर्ज़ी से हक़ का रास्ता दिखाया जिसमें लोगों ने इख़तेलाफ़ किया था। अल्लाह जिसे चाहता है सीधी राह दिखा देता है। फिर क्या तुम लोगों ने यह समझ रखा है कि बस यूँ ही जन्नत में दाख़िल हो जाओगे हालांकि अभी तुम पर वह सब नहीं गुज़रा है जो तुम से पहले ईमान लाने वालों पर गुज़र चुका है। उन पर सख़्तियां गुज़रीं, मुसीबतें आईं, हिला मारे गये। यहाँ तक कि वक़्त का रसूल और उसके साथी अहले ईमान चीख़ उठे कि अल्लाह की मदद कब आएगी। उस वक़्त उन्हें तसल्ली दी गयी कि हाँ अल्लाह की मदद क़रीब है।''

(अल बक़रा : २१३, २१४)

इन दो आयतों में चार बातें स्पष्ट हो जाती हैं:

(१) दुनिया में इन्सानों ने अपनी ज़िन्दगी का सफ़र हक़ की रोशनी में शुरु किया था, हक़ का इल्म पा लेने की वजह से इन्सानी गिरोह काफ़ी समय तक एक ही मिल्लत और एक ही उम्मत बना रहा। फिर ऐसा हुआ कि कुछ मतलबपरस्त लोगों की नफ़्सानियत, एक दूसरे पर ज़्यादती और ज़ाती फ़ायदों के झगड़ों ने मिल्लत के (इत्तेहाद (एकता) को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और दीने हक़ में

इख़तलाफ़ पैदा कर दिये, लेकिन अल्लाह तआला चूँकि रहमान व रहीम है इसलिये उसने इन्सानों को तबाह व बबाद होने के लिये बे सहारा न छोड़ा बल्कि उनकी इस्लाह और कामयाबी के लिये अपने प्रतिष्टित नेक और महान बन्दे भेजे।

(२) सारे अंबिया और रसूलों के साथ अल्लाह की तरफ़ से किताब बर हक़ भी होती थी, जो अक़ीदे और आमाल के सारे इख़तलाफ़ों और विवादों के लिये न्यायी और हाकिम की हैसियत रखती थी। अंबिया सिर्फ़ इसी लिये नहीं भेजे जाते थे कि खुश ख़बरी और डरावा सुना दें बल्कि उन्हें किताबे बर हक़ दे कर इस बात पर भी नियुक्त किया जाता था कि वह सारे इख़्तलाफ़ों को मिटा कर लोगों को फिर उसी दीने हक़ पर जमा करदें जिसमें इख़्तलाफ़ पैदा करके वह अलग-अलग टोलियों में बट गये थे। ज़िन्दगी का कोई मामला भी हो सिर्फ़ इस किताब को यह हक़ होता था कि वह उसके सही या ग़लत हक़ या बातिल होने का फ़ैसला करे।

(३) सय्यदना मोहम्मद सल्ल० पर ईमान लाने को ख़िताब करके बताया गया है कि अगली उम्मतों ने अपने वक़्त के रसूलों और ख़ुदा की किताबों को अपना क़ाज़ी व हाकिम आसानी से तसलीम नहीं किया और यह राह फूलों की सेज कभी नहीं रहा। यह हमेशा कांटों से भरी रहा है। तुमसे पहले के हक़ के आमन्त्रकों ने इस राह में हर तरह की मुसीबतें झेली हैं और दुशमनाने हक़ इस तरह मुसीबत में फंस गये हैं कि अहले ईमान के साथ वक़्त के

रसूल तक चीख़ उठे हैं। फिर तुम किस आधार पर यह उम्मीद कर सकते हो कि जो कुछ तुम से पहले ईमान लाने वालों पर गुज़र चुका है वह तुम पर नहीं गुज़रेगा।

(४) अल्लाह के बाग़ियों से कशमकश और किताबे बरहक़ की अक़ामत की सारी कोशिशों का लक्ष्य जन्नत में दाखिल होने का पात्र बनना है। ''अम हसिबतुम अन तद ख़ुलुल जन्ना'' के टुकड़े से एक बात तो यह मालूम होती है कि अक़ामते दीन की जद्दो जहद में जान खपाने वालों के अमल का प्रेरक और असली मक़सद अल्लाह की ख़ुशनूदी और जन्नत की प्राप्ति है। और दूसरी यह बात मालूम होती है कि जन्नत का प्राप्ति अक़ामते दीन के साथ सलंग्न है। ख़ुदा के नाज़िल किये हुए क़ानून पर लोगों को जमा करने की जद्दोजहद से दामन झाड़ लेने के बाद अल्लाह की प्रसन्नता और जन्नत की प्राप्ति की उम्मीद सही नहीं है।

अल्लाह के भेजे हुए सारे आदेशों की पैरवी और उन्हें लागू करने के लिये सियासी ताक़त ज़रुरी है, इसका स्पष्ट इशारा नीचे की आयत में किया गया है।

> ''हमने अपने रसूलों को स्पषट निशानियों के साथ भेजा और उन पर किताब और मीज़ान (तुला) नाज़िल की ताकि लोग न्याय और इन्साफ़ पर क़ायम हो जाऐं। और उन पर हमने लोहा उतारा और उसमें सख़्त जंग का सामान है और लोगों के लिये उसमें कुछ दूसरे फ़ायदे हैं और इसलिये कि अल्लाह जान ले कि बिन देखे उसकी

> और उसके रसूलों की मदद करता है। निसन्देह अल्लाह ताक़तवर और ज़बरदस्त है।'' (अल हदीदः 25)

इस आयत में किताब और मीज़ान के उतारे जाने की मक़सद यह बयान किया गया है कि ज़ालिम इन्सान ज़ुल्म का रवय्या छोड़ करके न्याय और इन्साफ़ के रवय्ये पर क़ायम हो जायें, लेकिन ज़ुल्म व ज़्यादती का ख़ात्मा और अदल व इन्साफ़ का क़ियाम क़ूव्वत व ताक़त के बग़ैर मुम्किन नहीं है। इसलिये आयत के दूसरे टुकड़े में लोहे के उतारे जाने के तीन मक़सद बयान किये गये हैं। एक यह कि उससे जंगी औज़ार और सामान जंग तैयार किये जाते हैं। दूसरी यह कि इसके अलावा कुछ दूसरे फ़ायदे भी हैं और तीसरी ग़र्ज़ यह है कि इस क़ूव्वत से अल्लाह के दीन की मदद की जाए। इससे मालूम हुआ कि अल्लाह की किताबें जिस इन्साफ़ को क़ायम करने के लिये नाज़िल हुई हैं उसको क़ायम करने और बाक़ी रखने के लिये क़ूव्वत और हुकूमत ज़रुरी है। ''फ़ीही बासुन शदीदुन'' के तहत अल्लामा महमूद आलूसी लिखते हैं।

> ''यह इशारा है इस बात का कि किताब और मीज़ान सत्तावान हाकिम के मोहताज हैं ताकि इन्साफ़ का क़ियाम मुम्किन हो सके क्योंकि बहुत से इन्सान ज़ुल्म को अपनी आदत व ख़सलत बना लेते हैं।''
>
> (रुहुल मआनी जिल्द २७ स० १८८ मत्बुआ मिस्र)

ज़ाहिर है कि अल्लाह की किताब बज़ाते ख़ुद अदल

व इन्साफ़ कायम नहीं कर सकती बल्कि वह हुकूमत क़ायम कर सकती है जो उस पर ईमान लायी हो। यही बात हाफ़िज़ इब्ने कसीर रह० ने सूरह हदीद की इस आयत को बतौर दलील पेश करते हुए लिखी है।

"हक के दुशमनों और मुख़ालिफ़ों को कुचलने के लिये सख्ती और ग़लबा ज़रुरी है।"

(तफ़सीर इब्ने कसीर मतबुआ मिस्र जि० ३ स० ५६)

और यही मतलब है इस हदीस का किः

"बेशक अल्लाह तआला इक़्तिदार और हुकूमत के ज़रिये उन चीज़ों का ख़ात्मा कर देता है, जिनका ख़ात्मा .कुरआन से नहीं करता।"

(तफ़सीर इब्ने कसीर जि० ३ स० ५६)

खुली बात है कि क़ुरआन खुद किसी ज़ालिम का हाथ नहीं पकड़ सकता, किसी ज़ानी (व्यभिचारी) की पीठ पर कोड़े नहीं बरसा सकता और किसी चोर का हाथ नहीं काट सकता। उसके आदेशों को लागू करने के लिये हुकूमत व इक्तिदार ज़रुरी है। यहीं से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि हुकूमत बज़ाते ख़ुद मक़सूद व मतलूब (लक्ष्य) नहीं है बल्कि इस क़ानून को लागू करने के लिये मतलूब है, जो अल्लाह ने इन्सानों की दुनिया और आखिरत की कामयाबी के लिये नाज़िल फ़रमाया है और यहीं से यह हक़ीकत भी ज़ाहिर हो जाती है कि अल्लाह अल्लाह तआला ने अपने आख़िरी रसूल को हुकूमत तलब करने की दुआ क्यों सिखाई थी। इस मौके पर सूरह बनी इसराइल की आयत ८० और उसकी तफ़सीर का अध्ययन कर लेना चाहिये।

चौथी दलील

सूरह अल माएदा रुकू ७ में तौरैत नाज़िल करने, बनी इसराइल के अंबिया और उनके उल्मा व फुक़हा (धार्मिक विद्वान) के मुताबिक़ तौरैत के फ़ैसलों का ज़िक्र करने के बाद फ़रमाया गया है।

> ''जो लोग अल्लाह के नाज़िल करदा (अवतरित) क़ानून के मुताबिक फ़ैसला न करें वही काफ़िर हैं।'' (अल मायदा :४४)

फिर आयत ४५ में तौरैत के क़ानूने क़िसास (बदले का क़ानून) का ज़िक्र करने के बाद कहा गया है।

> ''और जो लोग अल्लाह के नाज़िल करदा (अवतरित) क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वही ज़ालिम हैं।
> (अल मायदा :४५)

आयत ४६ में हज़रत ईसा अलैह० की आमद और इन्जील के उतारे जाने का ज़िक्र करके आयत ४७ में कहा गया है।

> ''और जो लोग अल्लाह के नाज़िल करदा (अवतरित) क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला ने करें वही फ़ासिक़ हैं।''
> (अल माएदाः ४७)

यह आयतें एक तरफ़ इस बात की मज़बूत दलील हैं कि सारे मामलों और मुक़दमों में अल्लाह की किताब के मुताबिक फ़ैसला करना इस दर्जे का फ़र्ज़ है इस पर अमल न करने वाला काफ़िर व ज़ालिम और फ़ासिक़ हो जाता है, दूसरी तरफ यह उस हक़ीक़त की भी पुख़्ता दलील हैं, कि दीन में मामलात की अहमियत, इबादात से कम नहीं हैं और दीन का वह हिस्सा जिसका ताल्लुक़ सियासत व

हुकूमत से है उतना ही अहम ज़रुरी है जितना वह हिस्सा जिसका ताल्लुक़ अल्लाह की इबादत से है। और तीसरी तरफ़ यह आयतें इस बात की भी गवाह हैं कि अक़ामते दीन, हुकूमत व अदालत की कुर्सियों पर उतना ही ज़रुरी जितना मस्जिद की सफ़ों और चटाइयों पर। अलबत्ता यह बात समझ लेने की है कि अल्लाह की किताब के मुताबिक़ फ़ैसला करने की कई सूरतें हो सकती हैं। और हर सूरत का हुक्म अलग है, मैं इसकी व्याख्या तफ़हीमुल क़ुरआन से नक़ल करता हूँ।

''जो शख़्स हुक्मे इलाही के ख़िलाफ़ इस बिना पर फ़ैसला करता है कि वह अल्लाह के हुक्म को ग़लत और अपने या किसी दूसरे इन्सान के हुक्म को सही समझता है वह मुकम्मल काफ़िर, ज़ालिम और फ़ासिक़ है, और जो अक़ीदा हुक्मे इलाही को बरहक़ समझता है मगर अमली तौर पर उसके ख़िलाफ़ फ़ैसला करता है, वह अर्गचे मिल्लत से ख़ारिज तो नहीं है मगर अपने ईमान को कुफ़्र, ज़ुल्म और नाफ़रमानी से सुरक्षित कर रहा है, उसी तरह जिसने तमाम मामलात में हुक्म इलाही से दूरी इख़्तियार कर लिया है वह तमाम मामलात में काफ़िर, ज़ालिम और फ़ासिक़ है और जो कुछ मामलात तो आज्ञाकारी और कुछ में इनकारी है, उसकी ज़िन्दगी में ईमान और इस्लाम और कुफ़्र व ज़ुल्म और फ़िस्क की मिलावट

ठीक–ठीक उसी अनुपात के साथ है जिस अनुपात के साथ इताअत और इनकार को मिला रखा है।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन जि० १ स० २७६)

कुछ लोग यह ख़्याल कर सकते हैं कि काफ़िर, ज़ालिम और फ़ासिक़ तो उन अहले किताब को कहा गया है, जो तौरैत व इन्जील के मुताबिक़ फ़ैसला न कर सके, इन आयतों में मुसलमानों को सम्बोधित नही किया गया है, इस शुबहे का जवाब ख़ुद इन आयतों में भी मौजूद है। अल्लाह तआला के बेलौस क़ानूने अदल में भी मौजूद है और सहाबा व ताबईन की व्याख्याओं में भी।

इन आयतों में इसका यह जवाब मौजूद है कि हर जगह ''वमन लम या हकुम बिमा अन ज़लल्लाह'' (जो अल्लाह के नाज़िल किये गये क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करे) के आम अल्फ़ाज़ कहे गये हैं, यह नहीं कहा गया है कि जो तौरैत के मुताबिक़ फ़ैसला न करे वह काफ़िर है और जो इन्जील के मुताबिक़ फ़ैसला न करे फ़ासिक़ है, बल्कि अल्फ़ाज़ आम रखे गये हैं जो क़ुरआन के मुताबिक़ फ़ैसला न करने पर भी पहले दर्जे में सादिक़ आते हैं।

अल्लाह तआला के बे लौस अदल का जवाब यह है कि मुसलमानों से उसका कोई खास रिश्ता नहीं है, कि वह यहूद व नसारा को तौरैत व इन्जील के मुताबिक़ फ़ैसला न करने पर काफ़िर, ज़ालिम, व फ़ासिक़ क़रार दे और मुसलमानों को क़ुरआन के मुताबिक़ फ़ैसला न करने पर मोमिन, आदिल और इताअत गुज़ार (आज्ञाकारी) क़राद दे।

सहाबा और ताबिईन (सहाबा के बाद के लोग) की व्याख्याओं में भी यह जवाब मौजूद है कि उन्होंने इन आयतों को अहले किताब

(यहूदी और इसाई) के साथ ख़ास नहीं किया है, एक बार हज़रत अलक़मा रह० व मसरुक़ रह० ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० से रिश्वत का हुक्म मालूम किया उन्होंने कहा वह हराम है, इन दोनों ने दूसरा सवाल यह किया अगर इस किसी मामले का फ़ैसला करने में रिश्वत देना हो तो उन्होंने जवाब दिया यह कुफ़्र है, और ''वमन लम यहकुम बिमा अन्ज़िलल्लाहू फ़उलाइका हुमुल काफ़िरुन'' की तिलावत की। (तफ़सीर इब्ने कसीर जि० २ स० १६) और इमाम शअबी रह० तो यह कहते थे कि ''फ़उलाइका हुमुल काफ़िरुन'' वाली आयत मुसलमानों के ही बारे में नाज़िल हुयी है, ग़ालिबन यह शिद्दत इसलिये इख़्तियार की होगी कि कहीं मुसलमान अपने आपको इस हुक्म से ख़ारिज न समझने लगें। एक बार किसी ने हज़रत हुज़ैफ़ा रज़ि० से कहा कि यह तीनों आयतें तो बनी इसराइल के लिये हैं, कहने वाले का मतलब यह था कि यहूदियों में से जिसने ख़ुदा के नाज़िल करदा हुक्म के खिलाफ़ फ़ैसला किया हो वही काफ़िर, वही ज़ालिम और वही फ़ासिक़ हैं, इस पर हजरत हुज़ैफ़ा रज़ि० ने फ़रमाया कितने अच्छे भाई हैं तुम्हारे लिये यह बनी इसराइल, कि कड़वा-कड़वा सब उनके लिये और मीठा-मीठा सब तुम्हारे लिये। हर्गिज़ नहीं ख़ुदा की क़सम तुम उन्हीं के तरीक़े पर क़दम ब क़दम चलोगे। (तफ़हीमुल क़ुरआन जि० १ स० ४७६)।

इन तीन आयतों के बाद अल्लाह तआला ने अपन आख़िरी रसूल को यह हुक्म दिया है कि हमने तुम पर जो किताबे बरहक़ नाज़िल की है कि तुम ख़ुदा के नाज़िल किये हुये इसी क़ानून के मुताबिक़ लोगों के मामलात का फ़ैसला करो और जो हक़ तुम्हारे पास आया है उससे मुंह मोड़ कर उनकी ख्वाहिशात की पैरवी न करो फिर आयत ४९ में क़ुरआन के मुताबिक़ फ़ैसला करने का दोबारा हुक्म देने के बाद यह भी कहा गया है।

"और होशियार रहो कि यह लोग तुमको फ़ितना में डाल कर इस हिदायत के किसी हुक्म से भी दूर न करने पायें, जो ख़ुदा ने तुम्हारी तरफ़ नाज़िल की है।"

(अल मायदा : ४९)

आयत का यह टुकड़ा हमारे लिये क़ाबिले ग़ौर है इसमें क़ुरआन के कुछ एहकाम से दूरी को पूरी सख़्ती के साथ रोक दिया गया है। इससे एक बात यह मालूम हुयी कि अल्लाह तआला का हमसे मुतालबा (मांग) यह है कि इसके नाज़िल करदा क़ानून की मुक़म्मल पैरवी की जाए, और दूसरी यह बात मालूम हुयी कि दुश्मनाने हक़ इस कोशिश में लगे रहते हैं अगर वह मोमिन को क़ुरआन से बिल्कुल विमुख नहीं कर सकते तो कम से कम उसके कुछ एहकाम ही से विमुख कर दे।

आगे कहा गया है :

"(अगर यह ख़ुदा के क़ानून से मुंह मोड़ते हैं)" तो क्या फिर जाहिलियत का फ़ैसला चाहते हैं।"

(अल मायदा : ५०)

इस आयत के अंतर्गत इब्ने कसीर रह० ने लिखा है कि चंगेज खाँ ने अपनी हुकूमत के लिये आदेशों का जो संग्रह तैयार किया था वह उसके खानदान के मुसलमान हो जाने के बाद भी अधूरा रहा। उसके बाद उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसका तर्जमा यह है

> ‘‘यह आदेशों का संग्रह अब उसके खानदान के मुसलमान बादशाहों और हाकिमों के नज़दीक वह अस्ल शरीअत है जिसकी वह पैरवी करते हैं। इस मजमुये एहकाम (आदेशा संग्रह) को किताबुल्लाह और सुन्नते रसूलुल्लाह के आदेशों से ऊपर रखते हैं, और जो एसा करे वह काफ़िर है, उससे उस वक़्त तक मुकाबला वाजिब है जब तक वह अल्लाह और उसके रसूल के हुक्म की तरफ़ पलट न आये और हर छोटे–बड़े मामले में उन्हीं के मुताबिक़ फ़ैसला न करने लगे।’’ (तफ़सीर इब्ने कसीर जि० १ स० ६७)

पाँचवी दलील

यह है अक़ामते दीन का वह अध्ययन और वह मतलब जो क़ुरआन हमारे सामने पेश करता है। इन्सानी जान व माल और इज़्ज़त व आबरु की हिफ़ाज़त, रास्तों का अमन और इन्सानी अख़लाक़ व किरदार को बिगाड़ से बचाने का इन्तिज़ाम एक सभ्य समाज के लिये जितना ज़रुरी है उससे हर समझदार शख्स वाक़िफ़ है। इन तहफ़्फ़ुज़ात (सुरक्षाओं) के बग़ैर न इन्सानी नफ़्स की तकमील आसान है न सालेह इज्तिमाइयत (सभ्य समाजिकता)

के वजूद को बचाये रखना मुम्किन है और न इन्सानियत का अपनी अन्तिम सीमा तक तरक्क़ी करना आसान है। बेशक इस्लाम जिन अक़ीदों की तालीम देता है और मौत के बाद दूसरी ज़िन्दगी और आख़िरत के स्थायी अज़ाब व सवाब की जिस हक़ीक़त को इन्सानी दिल व दिमाग़ में उतार देता है वह उन तहफ़्फ़ुज़ात की असल ज़मानत हैं। लेकिन केवल अक़ीदों से ज़ुल्म व ज़ोर और बुराइयों को मिटाना मुम्किन नहीं है इसलिये उसने अक़ीदों के साथ उन तहफ़्फ़ुज़ात की प्राप्ति के लिये शोक-सीमायें भी तय की हैं और अमन व अमान को बाक़ी रखने और अपराध पर अंकुश लगाने के क़ानून भी दिये हैं और जैसा कि ऊपर स्पष्ट हो चुका है उसने उन नियमों और क़ानूनों को लागू करने को इबादात की अदायगी से कम अहमियत नहीं दी है। इसलिये जब तक उन नियमों और क़ानूनों को लागू न किया जाये तब तक अक़ामते दीन की तकमील नहीं हो सकती। हुकूमत व सियासत के अध्याय से सम्बंधित क़ुरआन मजीद में बहुत से ओदश दिय गये हैं। मैं यहाँ उनमें से सिर्फ़ दो आदेश पेश करता हों। चोर का हाथ काट देने का हुक्म और ज़ानी (व्यभिचारी) की पीठ पर कोड़े लगाने का आदेश।

सूरह अल मायदा में चोर की सज़ा का हुक्म देने से पहले रहज़नों की सज़ा बयान की गयी है। मै पहले वह आयात और उनका तर्जमा यहाँ नक़ल करता हूँ ताकि रहज़नों और चोरों की सज़ाओं के दरम्यान मुनासिबत का एहसास ताज़ा हो जाये।

‘‘जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और ज़मीन में इसलिये दौड-धूप करते फिरते हैं कि फ़साद बरपा करें, उनकी सज़ा यह है कि क़त्ल किये जायें या सूली पर चढ़ाये जायें या उनके हाथ और पाँव मुख़ालिफ़ सिमतों से काट लिये जायें या जिला वतन कर दिये जायें, यह ज़िल्लत और अपमान तो उनके लिये दुनिया में है और आख़िरत में उनके लिये इससे बड़ी सज़ा है। मगर जो लोग तोबा करलें क़ब्ल उसके कि उन पर क़ाबू पाओ। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि अल्लाह माफ़ करने वाला रहम फ़रमाने वाला है।’’

(अल मायदा ३३, ३४)

यह सज़ा रहज़नों और डकैतों की भी है। इस्लामी हुकूमत के बाग़ियों और उस निज़ाम और व्यवस्था को बिगाड़ने की कोशिश करने वालों की भी है और कुछ उल्मा के नज़दीक मुर्तदों (धर्म-त्याग) की भी है। इन सज़ाओं की तफ़सील और क़ानूनी एहकाम और बहसें पेश करना इस वक़्त मेरे विषय से ख़ारिज है। इन आयतों के बाद चोरों के बारे में जो हुक्म दिया गया है वह यह है।

‘‘और चोर चाहे मर्द हो या औरत दोनों के हाथ काट दो। यह उनकी कमाई का बदला है अल्लाह की तरफ़ से सबक़ सिखाने वाली सज़ा और अल्लाह ग़ालिब और बड़ी हिकमत वाला है।’’ (अल मायदा ३८)

‘‘यह एक सूरह है जिसको हमने नाज़िल किया है और उसे हमने फ़र्ज़ किया है और उसमें हमने साफ़-साफ़ हिदायतें नाज़िल की हैं। शायद तुम सबक़ लो। ज़ानिया (व्यभिचारी) औरत ज़ानी (व्यभिचारी) मर्द दोनो में से हर एक को सौ कोड़े मारो और उन पर तरस खाने का जज़्बा अल्लाह के दीन के मामले में तुमको न हो अगर तुम अल्लाह और रोज़ आख़िर पर ईमान रखते हो। और उनको सज़ा देते वक्त अहले ईमान का एक गिरोह मौजूद रहे।’’ (अल नूर १, २)

इस सूरह की शुरुआत में यह बात पूरी वज़ाहत से बयान कर दी गयी है कि उसमे जो आदेश दिये जा रहे हैं वह फ़र्ज़ हैं और जो शख़्स अल्लाह और आख़िरत पर ईमान रखता है उस पर उन आदेशों पर अमल वाजिब और लाज़िम है। उसके बाद फ़ौरन ही ज़ानिया औरत और ज़ानी मर्द को सौ कोड़े मारने का हुक्म दिया गया है। लिहाज़ा मुसलमानों पर फ़र्ज़ है कि वह इन सज़ाओं को नाफ़िज़ करें।

सूरह मायदा और सूरह नूर की इन आयतों में उम्मते मुस्लिमा पूरी तरह से सम्बोधित है लेकिन सज़ा नाफ़िज़ करना हुकूमत का काम है क्योंकि हर शख़्स को क़ानून अपने हाथ में लेने की इजाज़त दे दी जाय तो सख़्त अफ़रा-तफ़री फैल जाये और सामूहिकता बिखर कर रह जाये। इन सज़ाओं को मुसलमानों की नियाबत में उनके हाकिम नाफ़िज़ करेंगे। मुसलमानों का काम यह है कि जहाँ उनकी हुकूमत क़ायम हो वहाँ यह देखते रहें कि क़ुरआन

व सुन्नत में निर्धारित की गयीं सज़ायें व ताज़ीरात नाफ़िज़ हो रही हैं या नहीं? अगर नाफ़िज़ हो रही हों तो अपनी हुकूमत को उन्हें नाफ़िज़ करने पर मजबूर करेंगे और अगर वह तैयार न हो तो उसे बदल देने की जद्दो जहद करनी पड़ेगी। और अगर किसी मुल्क में कोई ऐसी सियासी हुकूमत मौजूद ही न हो जो क़ुरआन के इन सज़ाओं को लागू कर सके तो दावते इस्लामी के पहले मर्हले से लेकर आख़िरी मर्हले तक एक ऐसे सियासी क़ूव्वत के हुसूल की जद्दो जहद वाजिब होगी।

छठी दलील

क़ुरआन करीम की वह आयत जिससे अक़ामते दीन की इस्तिलाह (Term) निकाली गयी है।

> ''तुम्हारे लिये वह आईन (दीन) मुकर्रर किया जिसकी अक़ामत का हुक्म दिया था नूह को और जिसके लिये हमने वही भेजी है तुम्हारी तरफ़ और जिसकी अक़ामत का हमने हुक्म दिया इब्राहीम और मूसा और ईसा को कि क़ायम करो दीन को और उसमें अलग-अलग न हो जाओ।'' (अल शूरा १३)

हमने यहाँ जो तर्जमा दिया है वह हज़रत शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह० के फ़ारसी तर्जमा का उर्दू तर्जमा है। उन्होंने इस आयत का फ़ारसी में जो तर्जमा किया है उसके अल्फ़ाज़ यह हैं।

मुकर्रर कर्द बराए शुमा अज़ आईन आंचे अम्र करदा बद बअकामते आं नूह रा व आंचे वही फरिस्तादेम बसुए तू व आंचे अम्र करदेन बअक़ामते आँ इब्राहिम व मूसा व ईसा बईं मज़मून के क़ायम कुनेद दीन रा व मुतफ़र्रिक मशवेद दर आँ ।''

(फ़ारसी तर्जमा, कुरआन शाह वली उल्लाह रह०)

हज़रत शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह० के इस तर्जमे में दो बातें ख़ास तौर पर क़ाबिल लिहाज़ हैं। एक यह कि उन्होंने दीन का तर्जमा ''आईन'' किया है और दूसरी यह कि उन्होंने ''अक़ीमुद्दीन'' का तर्जमा किया है ''क़ायम करो दीन को।'' इस का साफ़ मतलब यह है कि अम्बिया-ए-कराम अलैह० को जिस दीन की अक़ामत का हुक्म दिया गया था वह इन्सानी ज़िन्दगी का आईन व क़ानून था जिसे अल्लाह तआला ने इन्सानों की दुनयवी व उख़रवी कामयाबी के लिये नाज़िल किया था। शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह० ने इज़ालतुलख़िफ़ा में लिखा है कि ''अक़ामत दीन'' की इस्तिलाह एक मुकम्मल इस्तिलाह (Term) है जिसने दीन की तमाम कुल्लियात (बड़ी-बड़ी चीजों) व जुज़ियात (छोटी-छोटी चीज़ों) का अहाता कर लिया है। यह बात पिछले पन्नों में स्पष्ट की जा चुकी है कि हज़रत आदम और तमाम अंबिया अलैह० ख़िलाफ़ते इलाही के महान पर पर आसीन थे। शाह साहब ने ख़िलाफ़त की तारीफ़ और उसकी तफ़सील करते हुए लिखा है।

''मिल्लते मोहम्मदिया में यह बात यक़ीनी तौर पर मालूम है कि जब आप सल्ल० अल्लाह की सारी मख़लूक की

तरफ़ भेजे गये तो आपने उन लोगों के साथ जिनकी तरफ़ भेजे गये थे बहुत से मामलात और काम किये और हर मामले के लिये आपने अपने खलीफ़ा और नायब मुकर्र किये और तमाम मामलात को अन्जाम देने का बन्दोबस्त फ़रमाया। जब हम इन मामलात का जायज़ा लेते हैं और जुज़ियात (छोटी-छोटी) से कुल्लियात (बड़ी-बड़ी) की तरफ़ और कुल्लियात से किसी ऐसी कुल्ली (सम्पूर्णता) की तरफ़ मुन्तक़िल होते हैं जो सबको अपने अन्दर समेटे हो तो उस वाहिदे कुल्ली की बुलन्दतरीन चीज़ ''अक़ामते दीन'' क़रार पाती है जो तमाम क़ुल्लियात को अपने दायरे में लिये हुये थे और इस बुलन्दतरीन चीज़ के तहत दूसरी चीज़ें हैं।'' (इज़ालातुलख़िफ़ा जि० १ स० २१)

अपने ज़माने की इल्मी व मन्तक़ी (ज्ञान व तर्क) में ज़बान हज़रत शाह साहब ने जो कुछ लिखा है उसका हासिल यह है कि नबी सल्ल० ने बहैसियत नबी बहुत से काम अन्जाम दिये हैं उनमें से बहुत से मामलात उसूल और क़ायदा कुल्लिया (universal law) की हैसियत रखते थे। अब अगर कोई शख्स इन सारे मामलात को किसी एक इस्तिलाह (Term) में जमा करना चाहे तो वह इस्लाह ''अक़ामते दीन'' ही होगी जिस शख्स की भी हदीस, तफ़सीर, फ़िक़्ह, तारीख और पूरे इस्लामी साहित्य पर नज़र होगी वह शाह

साहब की इस राय से सहमत होगा क्योंकि हम देखते हैं कि दौरे सहाबा से ले कर आज तक तमाम उल्माएउम्मते दीने इस्लाम की इशाअत (प्रसार) और तनफ़ीज़ (क्रियानवयन) के लिये यही इस्तिलाह इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं।

''अक़ामते दीन'' की मुकम्मल इस्तिलाह (Term) के तहत जो बातें और मामलात और कुल्लियात व जुज़ियात दाख़िल है उनमें से दो उसूली बातों का ज़िक्र शाह साहब ने किया है।

> ''इन में से एक दीनी इल्म की तबलीग़, क़ुरआन व सुन्नत की तालीम और याददिहानी व नसीहत है। (वही है जिसने उम्मियों में उन्हीं मे से एक रसूल भेजा जो उनको उसकी आयतें सुनाता है उनको पाक करता है और उनको शरीअत और हिकमत की तालीम देता है) और यह बात मालूम है कि आप सल्ल० अपने सहाबा को नसीहत फ़रमाया करते थे। दूसरी चीज़ अरकाने इस्लाम की अक़ामत है इसलिये कि यह बात भी मशहूर है कि आप जुमा, ईद और पन्ज वक़्ता नमाज़ों की अक़ामत ख़ुद करते थे और हर मुक़ाम पर इमामों को नियुक्त फ़रमाते थे, ज़कात वसूलने के लिये अपने उम्माल (कर्मचारी) भेजते और ज़कात को उसकी मदों में खर्च करते, इसी तरह रमज़ान और ईद में चाँद की शहादत सुनते और सुबूते शहादत के बाद रोज़ा रखने या उसे ख़त्म करने का हुक्म देते।

आप सल्ल० ने खुद हज की इमामत की। (यानी अपनी क़ियादत व इमामत में लोगों को फ़रीज़ाये हज अदा कराया) और ९ हिजरी में आप हज के लिये तशरीफ़ न ले जा सके तो हज़रत अबू बक्र रज़ि० को अमीरुल हज मुक़र्रर फ़रमाया ताकि वह हज की अक़ामत करें। इसी तरह जिहाद की अक़ामत, हाकिमों की नियुक्ति, जिहाद के लिये फ़ौजों और फ़ौजी दस्तों को भेजना, इख़्तिलाफ़ात और विवादों में फ़ैसले करना और इस्लामी शहरों में क़ाज़ियों को नियुक्त करना, इस्लामी सज़ाओं को लागू करना, नेकी का हुक्म देना बुराई से रोकना, उनके दर्जात सबको मालूम हैं, मोहताजे बयान नहीं है। फिर जब आप रफ़ीक़े आला (अल्लाह तआला) से जा मिले तो अक़ामते दीन इसी तफ़सील के साथ जो ऊपर गुज़री, आप सल्ल० के बाद के लोगों पर भी वाजिब होगी।

(इज़ालतुल ख़िफ़ा जि० १ स० ३)

शाह वली उल्लाह रह० साहब की इस स्पषटीकरण से मालूम हुआ कि हुज़ूर सल्ल० ने तालीम कुरआन व सुन्नत और तज़कीर व नसीहत की मजलिसों से लेकर बद्र व हुनैन और ख़ैबर व तुबूक के मैदानों तक और तबलीग़ दीन से लेकर मुल्की इन्तेज़ाम तक में जो काम भी किया वह सब अक़ामते दीन में दाख़िल था और उसका कोई हिस्सा दीने इस्लाम से ख़ारिज न था।

शरीअतों के दरम्यान इख़्तिलाफ़ सिर्फ़ जुज़वी (आंशिक) था

ऊपर जो कुछ लिखा गया उससे मालूम हुआ कि अक़ामते दीन अंबिया-ए-कराम अलैह० पर फ़र्ज़ था और सय्यदना मोहम्मद रसूलुल्लाह सल्ल० के बाद आप की उम्मत पर उसी तफ़सील के साथ फ़र्ज़ रहा जिस तफ़सील के साथ आप पर फ़र्ज़ थी। अब यह बात भी समझ लेना चाहिये कि अल्लाह की भेजी हुई शरीयतों में इख़्तिलाफ़ों की किस्में क्या थी? उसे स्पषट करने की ज़रुरत इस शुबहे की वजह से पेश आती है कि अक़ामते दीन की आयत में पाँच महान अंबिया हज़रत नूह व हज़रत इब्राहिम व हज़रत मूसा व हज़रत ईसा और मुहम्मद सल्ल० अजमईन का नाम लेकर उन्हें अक़ामते दीन का हुक्म दिया गया है। अब अगर दीन की अक़ामत में शरीयत की अक़ामत को भी दाख़िल माना जाए तो यह बात सही न होगी। इसलिये कि शरीयतें मुख़तलिफ़ रही हैं। इस शुबहे को दूर करने के लिये शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह० ने अपनी मशहूर किताब ''हुज्जतुल्ललिबालेग़ा'' के एक अध्याय में सूरह शूरा की अक़ीमुद्दीन वाली आयत नक़ल करके यह स्पषट किया है कि अंबिया-ए-कराम अलैह० को जिस दीन की अक़ामत का हुक्म दिया गया था उसमें कौन-कौन सी चीज़ें हमेशा दाख़िल रही हैं और यह कि शरीयतों के मुख़तलिफ़ होने का मतलब क्या है और इख़्तिलाफ़ की किस्में क्या रही है? उन्होंने असल दीन की जिस पर तमाम अंबिया-ए-कराम सहमत रहे हैं, व्याख्या करते हुए पहले अल्लाह तआला की ज़ात व सिफ़ात से संबधित अक़ीदे और दूसरे अक़ीदों और आस्थाओं का

ज़िक्र किया है। उसके बाद उन्होंने नेकी के कामों में तहारत व पाकीज़गी, नमाज़, ज़कात, रोज़ा, हज के फ़राएज़ और दुआ, ज़िक्र, तिलावत किताबुल्लाह और दूसरे नवाफ़िल बयान किये हैं। अक़ीदे और उन आमाल की तफ़सील के बाद उन्होंने जो कुछ लिखा है वह उनकी अपनी तहरीर में यह है।

> ''और इसी तरह निकाह की शर्तें, ज़िना के हराम होने, लोगों के दरम्यान इन्साफ़ क़ायम करने, ज़ुल्म व ज़्यादती के हराम होने, मुजरिमों पर सज़ाओं के लागू किये जाने अल्लाह के दुशमनों के साथ जिहाद करने अल्लाह के एहकाम और उसके दीन के प्रचार में जद्दो जहद करने पर सहमत रहे हैं। लिहाज़ा यह है अस्ल दीन और इसीलिये क़ुरआन अज़ीम ने इन चीज़ों की गहराई से बहस नहीं की इल्ला माशाल्लाह क्योंकि जिन लोगों की ज़बान में क़ुरआन नाज़िल हुआ था उनके नज़दीक यह सब चीज़ें तसलीम शुदा थीं और शरीअतों के दरम्यान इख़्तिलाफ़ जो कुछ था इन मामलों की सूरतों और रुपों में था।''

शाह वलीउल्लाह रह० की इस तहरीर से स्पषट हुआ कि अल्लाह की भेजी हुई सारी शरीयतें अक़ामते अदल (इन्साफ़ व क़याम), अक़ामते हुदूद (सज़ाओं का क़याम) और जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह जैसे इन्तेहाई और आख़िरी सियासी व इज्तिमाई

एहकाम (राजनैतिक एवं सामाजिक आदेश) तक में सहमत थीं और यह सब एहकाम और आदेश अस्ल दीन में दाख़िल थे। इख़्तिलाफ़ जो कुछ था केवल जुज़्वी (आशिंक) था। चुनाँचे शाह साहब रह० ने जुज़्वी इख़्तिलाफ़ की चन्द मिसालें देते हुऐ लिखा है।

> ''मूसा अलैह सलाम की शरीयत में नमाज़ का क़िबला बैतुल मुकद्दस था और हमारे नबी सल्ल० की शरीयत में काबा है, उनकी शरीयत में ज़ानी (व्यभिचारी) की सज़ा सिर्फ़ रजम (पत्थर मार का हलाक कर देना) थी और हमारी शरीयत में शादी शुदा ज़ानी की सज़ा रजम है और ग़ैर शादी शुदा ज़ानी की सज़ा कोड़ा है, उनकी शरीयत में सिर्फ़ क़िसास (बदले) का हुक्म था और हमारी शरीयत में क़िसास और दियत (जुर्माना) दोनों का हुक्म आया। इसी तरह उनके दरम्यान इबादात के अवकात (समयावली) और उनके आदाब व अरकान मुख़तलिफ़ रहे हैं।''
>
> (हुज्जतुल्लाहिल बालेग़ा जि० १ स० ८७)

तहरीर का हासिल यह है कि जिस दीन की अक़ामत का हुक्म अम्बिया अलैह० को दिया गया था उसमें मिसाल के तौर पर नमाज़ की अक़ामत यक़ीनन दाखिल थी। हालाँकि नमाज़ के क़िबला, उसके आदाब और अवकात में इख़्तिलाफ़ मौजूद था तो क्या इस जुज़्वी (आशिंक) इख़्तिलाफ़ की वजह से यह कहना सही

हो सकता है कि अक़ामते दीन के हुक्म से नमाज़ ख़ारिज थी। ज़ाहिर है कि कोई साहबे इल्म यह नहीं कह सकता। इसी तरह शरई सज़ायें क़ायम करने और राहे ख़ुदा में जिहाद करने का हुक्म भी जुज़्वी इख़्तिलाफ़ के बावजूद अक़ामते दीन के कामिल हुक्म में दाख़िल था।

यह बात हर शुबहे से बलन्द है कि सूरह अश्शूरा की आयत ''शरअ लकुम मिनददीन'' में जिस ''अद्दीन'' की अक़ामत को फ़र्ज़ क़रार दिया गया है वह सिर्फ़ अक़ीदे और इबादात ही नहीं बल्कि दीन व शरीयत के पूरे निज़ाम पर हावी था चाहे उसका ताल्लुक़ इन्सान की ज़ाती ज़िन्दगी से हो या समाजी ज़िन्दगी से।

सातवीं दलील

क़ुरआन करीम की बहुत सी आयतों में हम यह पाते हैं कि अल्लाह तआला ने अपने नबियों और रसूलों को कुफ़्र व शिर्क की ताक़त के मुक़ाबले में जब भी भेजा अपनी मदद का वादा करके भेजा और हक़ व बातिल की कशमकश के हर नाज़ुक मोड़ पर तसल्ली दे कर उनके हौसलों को बरक़रार रखा और उन्हें दुशमन ताक़तों के मुक़ाबले में साबित क़दम रहने और उस राह में हर मुसीबत झेल जाने का हुक्म दिया है। मुश्किलात में सब्र और हक़ के ग़लबे के लिये अल्लाह की मदद का वादा भी इस बात की दलील है कि अंबिया-ए-कराम अलैह० के ज़िम्मे जो काम किया गया था वह उन पर फ़र्ज़ था और वादाये इलाही की जो आयतें हैं उनके अल्फ़ाज़ भी ये बताते हैं कि अंबिया के ज़िम्मे जो काम सौंपा

गया था वह यह है कि दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब किया जाए। इस सिलसिले की जो आयतें हैं उन्हें हम चार क़िस्मों में बाँट सकते हैं।

१. वह आयतें जिन में आम तौर पर तमाम रसूलों से यह वादा किया गया है कि हम तुम्हे काफ़िरों पर ग़ालिब करेगें।

२. वह आयतें जिन में खास तौर पर हज़रत मूसा व हारुन अलैह० से वादा किया गया है।

३. वह आयतें जिन में हज़रत मोहम्मद सल्ल० से वादा किया गया है।

४. वह आयतें जिन में उम्मते मुस्लिमा से उसका वादा किया गया है।

हम तवालत (लम्बाई) से बचने के लिये इन चार क़िस्म की आयतों में से सिर्फ़ एक एक आयत यहाँ पेश करेंगे।

> १. ''और अपने बन्दों (यानी रसूलों) के हक़ में हमारा फ़ैसला पहले ही नाफ़िज़ हो चुका है। बेशक वही लोग हैं जिन की मदद की जाये और बेशक हमारा ही गिरोह ग़ालिब रहेगा।'' (साफ्फ़ात १७१-१७३)

इन आयतों में जिस ज़ोर और ताकीद के साथ मदद का वादा किया गया और ग़लबे की खुशखबरी सुनाई गयी है इससे अरबी जानने वाले वाक़िफ़ हैं। इन आयतों से कई हक़ीक़तें स्पषट होती हैं।

पहला – तमाम रसूलों से अल्लाह का यह अपरवर्तनीय वादा और उसका अटल फ़ैसला है कि वह सत्य विरोधी ताक़तों के मुक़ाबले में उनकी मदद करेगा।

दूसरा – रसूलों और उन पर ईमान लाने वाले और हक़ की दावत देने वाले की हैसीयत ऐसे उपदेशकों की नहीं जिनका काम उपदेश व नसीहत पर ख़त्म हो जाता हो बल्कि उनकी हैसीयत हाकिमे कायनात के सिपाहियों की होती है जो उसके बाग़ियों के ख़िलाफ़ संगठित होता है। और यह संगठन दीने हक़ को दीने बातिल (असत्य धर्म) पर ग़ालिब करने के लिये ही होता है, उसका कोई दूसरा मक़सद नहीं होता।

तीसरा – रसूल जिस दीन और जिस पैग़ाम पर नियुक्त होते हैं उसकी हैसीयत किसी ऐसी तबलीग़, ख़ुशख़बरी, सिफ़ारिश और नसीहत की नहीं होती जिसे निरस्त कर देने के बाद उसकी कोई नोटिस न लिया जाए बल्कि एक ऐसे शाही फ़रमान की होती है, जिसके इन्कार को बादशाह अपने ख़िलाफ़ बग़ावत और चैलेन्ज समझता है।

चौथा – बाग़ी गिरोह के मुक़ाबले में आख़िरकार बादशाह की वफ़ादार फ़ौज ही ग़ालिब, कामयाब और फ़ातेह (विजयी) होती है।

२. ख़ास तौर पर हज़रत मूसा और हज़रत हारुन अलैह० से जो वादा किया गया था उसे सूरह अल क़सस की प्रारम्भिक

आयतों में पढ़ना चाहिये। हम यहाँ चन्द आयतों का सिर्फ़ तर्जमा नक़ल करते हैं।

"फ़िरऔन मुल्क मिस्र में बढ़ चढ़ रहा था और उसने वहाँ के लोगों के अलग-अलग गिरोह क़रार दिये थे उनमें से एक गिरोह (बनी इसराइल) को उसने इस क़द्र कमज़ोर समझ रखा था कि उनके बेटों को ज़िबह करा देता और उनकी औरतों (बेटियों) को ज़िन्दा रखता। निसन्देह वह फ़सादियों में से एक फ़सादी था और हमने इरादा किया कि जो लोग इस मुल्क में कमज़ोर समझ लिये गये थे उनपर एहसान करें और उन्हें सरदार और पेशवा बनायें और उन्हें (सल्तनत का) वारिस बना दें और ज़मीन में उनके इक़्तेदार को जमा दें और फ़िरऔन व हामान और उनकी फौज को बनी इसराइल की तरफ़ से जिस बात का ख़तरा था वह बनी इसराइल के हाथ से उनके सामने ले आऐं।" (अल क़सस ४-६)

बनी इसराइल पर एहसान करना, उन्हें इमामत और लीडर के पद पर बिठाना उन्हें हुकूमत व सल्तनत का वारिस बनाना, ज़मीन में उनके इक़्तेदार को जमा देना और फ़िरऔन व हामान और उनकी फौज को मग़लूब (अधीन) करना। यह था वह इरादा जो सुल्ताने कायनात ने किया। अल्लाह का यह इरादा किस तरह

ज़ाहिर हुआ उसकी तफ़सीली रुदाद आगे की आयतों और. कुरआन की दूसरी सूरतों में बयान की गयी है, जिसका सार यह है कि हज़रत मूसा व हज़रत हारुन अलैह० को रिसालत व नबूवत अता करके उन्हें इस मिशन की पूर्ति पर नियुक्त किया गया और उन्हीं के हाथों इरादाये इलाही जा़हिर हुआ। फ़िरऔन की जाबिर व ज़ालिम हुकूमत के मुक़ाबले में दोनों नबियों को भेजते वक़्त जो स्पषट वादा किया गया और जो ख़ुश ख़बरी सुनाई गयी उसके अल्फ़ाज़ यह हैं।

> ''फ़रमाया हम तुम्हारे भाई को तुम्हारा क़ूव्वत बाज़ू (मज़बूत सहारा) बनायेंगे और तुम दोनों को ऐसा ग़लबा देगें कि फ़िरऔन के लोग तुम तक पहुँच भी न सकेगें। हमारी निशानियों के ज़ोर से तुम दोनों और तुम्हारी पैरवी करने वाले ही ग़ालिब रहेगें।'' (अल क़सस ३५)

क़ुरआन की इन वज़ाहतों को पढ़ कर कौन यह कह सकता हैं कि हज़रत मूसा व हज़रत हारुन अलैह० बातिल (असत्य) को मग़लूब करके हक़ (सत्य) को ग़ालिब करने के मिशन पर नियुक्त न थे और कौन यह तसव्वुर कर सकता है कि रिसालत व नबूवत के मनसब से हुकूमत व सल्तनत का ताल्लुक़ सिर्फ़ ज़िम्नी और जुज़्वी (आशिंक) होता है। इन आयतों से ज़्यादा स्पष्ट और किस नस्से सरीह (वाज़ेह हुक्म) की ज़रुरत है जो यह बताए कि अंबिया-ए-कराम अलैहिस्सलाम के मक़सदे आमद में ग़ल्बये हक़ और हुकूमत व इक़्तदार का हुसूल भी शामिल रहा है।

क्योंकि हुकूमत के बग़ैर दीने हक़ की पूरी–पूरी पैरवी मुम्किन ही नहीं है।

३. सय्यदना मोहम्मद सल्ल० को मक्के में दावते इस्लामी के शुरुआती दौर ही में यह ज़बरदस्त शाही एलान सुना दिया गया था।

> ''अन क़रीब उनका जत्था पराजित हो जायेगा और वह पीठ फेर कर भाग जायेगें।'' (अल क़मर : ४५)

इस आयत ने शुरु ही में क़ुरआन के मानने वालों पर यह हक़ीक़त स्पष्ट कर दी थी कि इस्लाम की जो दावत पेश की जा रही है उसकी हक़ीक़त क्या है और उसका अन्जाम क्या होने वाला है। न मुसलमानों को उसके बारे में कोई ग़लत फ़हमी बाक़ी रही थी और न मुश्रिकीन ग़लत फ़हमी में मुब्तला रहे थे। इस आयत ने पुकार कर कह दिया था कि दीन हक़ को ग़ालिब करने के लिये जिहाद बिस्सैफ़ (तलवार से जिहाद) का मर्हला आकर रहेगा और यह दीन ग़ालिब हो कर रहेगा।

४. उम्मते मुस्लिमा से क़ियामत तक के लिये जो वादा किया गया है। वह यह है।

> ''ऐ ईमान वालों! अगर तुम अल्लाह की मदद करोगे तो वह तुम्हारी मदद करेगा और तुम्हारे क़दमों को जमा देगा।'' (सूरह मोहम्मद : ७)

अपने दीन की मदद को अपनी मदद कह कर अल्लाह तआला ने अपने नेक बन्दों का दर्जा इतना बढ़ा दिया है कि उससे बुलन्द किसी और दर्जे की कल्पना नहीं की जा सकती। इस आयत ने वादाये इलाही की हक़ीक़त को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है और यह है कि अल्लाह ने अपने दीन की मदद की शर्त पर या नुसरते दीन के फ़र्ज़ को अन्जाम देने के नतीजे में अपनी मदद का वादा फ़रमाया है। सूरह मोहम्मद की इस आयत में और क़ुरआन की दूसरी आयतों में अल्लाह के दीन की मदद से तात्पर्य यह है कि उसे बातिल दीनों (असत्य धर्म) पर ग़ालिब करने में अपनी जान और अपना माल खर्च किया जाये और अल्लाह के दुश्मनों के मुक़ाबले में अपनी कोई चीज़ बचा कर न रखी जाये। अगर मुसलमानों ने यह डयूटी अन्जाम दी तो अल्लाह उनकी मदद करेगा और दुश्मनों के मुक़ाबले में उन्हें मज़बूती अता करके उनके क़दमों को उखड़ने से बचाएगा। यही बात दूसरे अन्दाज़ में यूँ कही गयी है।

''और पस्त हिम्मत न हो और ग़म न करो। अगर तुम मोमिन हो तो तुम ही ग़ालिब रहोगे।''

(आले इमरान १३८)

इस आयत में कहा गया है कि अगर तुम सच्चे और पक्के मोमिन हो तो ग़लबा और इज़्ज़त व शान तुम्हारे ही लिये है। तुम्हें वक़्ती हार से पस्त हिम्मत न होना चाहिये बल्कि यह सोचना चाहिये कि वह कोताही क्या थी, जिसकी वजह से हार हुई। कोताहियों को दूर करके अगर तुमने सच्चे और पक्के ईमान का सुबूत दिया तो तुम्ही ग़ालिब रहोगे। जैसा कि ऊपर कहा गया।

वादाये इलाही की इन आयतों ने पूरी तरह यह बात स्पष्ट कर दी है कि दीन को ग़ालिब करने की जद्दो जहद और इस राह में त्याग और कुरबानी फ़र्ज़ है वरना अल्लाह की मदद के लिये यह शर्त हरर्गिज़ न लगाई जाती।

आठवीं दलील

एलाये कलिमतुल्लाह यानी अल्लाह के दीन को ग़ालिब करने की जद्दो जहद में अपनी जान चुराने वाले और अपना माल ख़र्च न करने वाले मुनाफ़िक़ हैं।

क़ुरआन का तर्जमे के साथ अध्ययन करने वाले लोग भी इससे नावाक़िफ़ नहीं होंगे कि बहुत से मुक़ामात पर मुनाफ़िक़ों की जो आदतें व ख़सलतें और जो उनकी विशेषताऐं बयान की गयी हैं उनमें उनकी दो बड़ी पहचान और सिफ़तें यह बयान की गयी हैं कि वह राहे ख़ुदा में अपना माल ख़र्च नहीं करते और दुश्मनाने दीन से मुक़ाबला और जंग करने में अपनी जान चुराते हैं और क़ुरआन का अध्ययन करने वाले इससे भी नावाक़िफ़ न होगें कि दीन की सर बुलन्दी के लिये माल ख़र्च करने और अपनी जान खपाने को ईमान की कसौटी क़रार दिया गया है। इस तरह की तमाम आयतों से दिन की रोशनी की तरह यह बात स्पष्ट होती है कि अल्लाह की राह में अपनी हैसियत भर माल ख़र्च करना और अक़ामते दीन की जद्दो जहद में बज़ाते ख़ुद हिस्सा लेना एक ऐसी डयूटी है जिसे बिना किसी शरअी मज़बूती तर्क करने के बाद मुख़्लिसाना ईमान बाक़ी नहीं रहता। क्योंकि अल्लाह पर ईमान एक ऐसा अहद और मामला है, जिसमें मोमिन अपनी जान, अपना

माल और सब कुछ अल्लाह के हाथ जन्नत के बदले बेंच देता है कर देता हैं और यक़ीन रखता है कि उसके पास जो कुछ है वह अल्लाह की अमानत है। अब अगर कोई ईमान का दावेदार उसके ख़िलाफ़ तर्ज़े अमल इख़्तियार करता है तो यह ख़ुलूस की अलामत नहीं बल्कि निफ़ाक़ ही की अलामत हो सकती है। मैं ज़्यादती के डर से यहाँ सिर्फ़ चन्द आयतें पेश करुंगा।

१. उहद की जंग ग़ालिबन इस्लाम व कुर्फ़ के दरम्यान वह पहली जंग और मुसलमानों की एक ऐसी आज़माइश थी, जिसमें अक़ीदे और अमल दोनों ही क़िस्म का निफ़ाक़ खुल कर सामने आ गया था। मुनाफ़िक़ों की एक बड़ी जमाअत, जिस का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई था, इस जंग में शरीक ही नहीं हुयी। वह अपनी जमाअत को लेकर रास्ते ही से पलट गया और कुछ लोग जो अमली निफ़ाक़ में ग्रसित थे वह मजबूरन सम्मिलित तो हुए लेकिन बे दिली और बुज़दिली के साथ। उन्होंने अपनी जानों के सिवा दूसरी कोई फ़िक्र न थी। इस जंग पर मुकम्मल तबसिरा आले इमरान में मौजूद है। हम यहाँ चन्द आयतों का तर्जमा पेश करेंगे। बहाना बना कर जो लोग भाग खड़े हुये थे उनके बारे में कहा गया है।

> ''और दोनों जमाअतों के मुडभेढ़ के दिन तुम्हें जो मुसीबत पहुँची, यह अल्लाह के हुक्म से पहुँची ताकि अल्लाह ईमान वालों को अलग करदे जिनसे कहा गया

कि आओ अल्लाह की राह में जंग करो या दुश्मन को दफ़ा करो। उन्होंने कहा कि अगर हमें अन्दाज़ा होता कि जंग होनी है तो हम ज़रुर तुम्हारे साथ होते। यह लोग उस दिन ईमान की अपेक्षा कुर्फ़ से ज़्यादा क़रीब थे। यह अपने मुंह से वह बात कहते हैं जो उनके दिलों में नहीं है और अल्लाह उस चीज़ को ख़ूब जानता है, जिसको यह छुपाते हैं। यह हैं जो खुद तो बैठे रहे और अपने भाइयों के बारे में कहा कि अगर वह हमारी बात मान लेते तो यूँ क़त्ल न होते, उनसे कह दो कि अगर तुम अपनी इस बात में सच्चे हो तो खुद अपने ऊपर से मौत को टाल दो।'' (आले इमरानः १६६-१६८)

इन आयतों से स्पष्ट हुआ कि राहे खुदा में जिहाद, ईमान की वह कसौटी है, जो मोमिनों और मुनाफ़िक़ों को एक दूसरे से अलग कर देती है। इस जंग में बहाना बना कर भागने वाले मुनाफ़िक़ थे। यही बात दूसरे अन्दाज़ में आयत १७६ में भी कही गयी है। वहाँ मुनाफ़िक़ और मोमिन के बजाए ख़बीस (गन्दा) और तय्यब (पाक) के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये गये हैं। यानी यह बात अल्लाह की हिकमत के खिलाफ़ है कि वह ख़बीस (मुनाफ़िक़) और तय्यब (मोमिन) को हमेशा मिला जुला रहने दे।

अहले ईमान के लिये उहद की जंग में जो हिकमत पोशीदा थी वह यही थी कि नापाक और खबीस मुनाफ़िकों और पाक व तय्यब

मोमिनों को एक दूसरे से अलग कर दे और अहले ईमान अपनी खुली आँखों से देख लें कि उनमें मुख़्लिस कौन है और मुनाफ़िक़ कौन है?

वह लोग जो बेदिली के साथ जंग में सम्मिलित हुए थे उनकी ज़ेहनी हालत का नक्शा इन शब्दों में खींचा गया है।

> ''और एक गिरोह को अपनी जानों की पड़ी रही। यह ख़ुदा के बारे में ख़िलाफ़े हक़ीक़त ज़माना जाहिलीयत के क़िस्म की बदगुमानियों में मुब्तला रहे। यह कहते रहे कि भला हमें इन मामलात में क्या दख़ल? कह दो सारा मामला अल्लाह के इख़्तियार में है। वह अपने दिलों में कुछ छुपाये हुए हैं जो तुम पर ज़ाहिर नहीं करते। वह दिल में कहते हैं कि अगर इस मामले में कुछ हमारा भी दख़ल होता तो हम यहाँ न मारे जाते। कह दो कि अगर तुम अपने घरों में भी होते जब भी जिन का क़त्ल होना लिखा था वह अपनी क़त्ल गाहों तक पहुँच कर रहते।'' (आले इमरान : १५४)

यह उन कमज़ोर ईमान लोगों का नक्शा है जिन के दिलों में अभी ईमान ने घर नहीं बनाया था और ज़मानए जाहिलियत के ख़्यालात व तसव्वुरात (धारणायें) उनके दिलों में मौजूद थे। ऊपर की आयत में उनके तसव्वुरात और ख़्यालात को रद्द करके सही ख्यालात की तरफ़ उनकी रहनुमाई की गयी है।

इस जंग पर टिप्पड़ी करते हुए मुनाफ़िक़ों की कंजूसी यानी राहे ख़ुदा में माल ख़र्च न करने पर भी चेतावनी की गयी है।

"और जो लोग कंजूसी करते हैं इस चीज़ में जो अल्लाह ही ने अपने फ़ज़्ल में से बख़्शी है। यह न ख़्याल करें कि यह उनके हक़ में बेहतर है बल्कि यह उनके हक़ में बहुत बुरा है, जिस चीज़ में वह कंजूसी करेगें उसका क़ियामत के दिन उनको तौक़ पहनाया जायेगा। और अल्लाह ही के लिये है आसमानों और ज़मीन की विरासत और अल्लाह जो कुछ तुम कर रहे हो उससे बाख़बर है।" (आले इमरान : १८०)

यह इस बात का इज़हार है कि मुनाफ़िक़ जिस तरह राहे ख़ुदा में अपनी जान चुराते हैं इसी तरह अपने माल के मामले में भी चोर होते हैं। उनकी दौलत परस्ती उसकी इजाज़त नहीं देती कि वह दीन हक़ को सर बुलन्द करने के लिये अपने माल को रोके रखें।

ग़लबए दीन या अक़ामते दीन की जद्दो जहद के फ़र्ज़ होने की यह एक बहुत बड़ी दलील है कि उसको ईमान की कसौटी और उस राह में जी चुराने और माल ख़र्च करने को निफ़ाक़ की अलामत क़रार दिया गया है।

२. नीचे की आयत बताती है कि बिना किसी शरई मजबूरी के जिहाद में सम्मिलित न होने की इजाज़त मांगना इस बात की खुली निशानी है कि इजाज़त मांगने वाले को अल्लाह और आख़िरत पर यक़ीन नहीं है।

‘‘जो लोग सच्चे दिल से अल्लाह और आखिरत के दिन पर ईमान रखते हैं वह तो कभी तुमसे दरख़्वास्त न करेंगे कि उन्हें अपनी जान व माल के साथ जिहाद करने से माफ़ रखा जाए। अल्लाह परहेज़गारों को ख़ूब जानता है। ऐसी इजाज़त तो तुमसे वही लोग माँगते हैं जो अल्लाह और आखिरत के दिन पर ईमान नहीं रखते जिन के दिलों में शक है और अपने शक में भटक रहे हैं।’’

अगर अल्लाह का कलिमा बलन्द करने के लिये जान व माल के साथ जिहाद फ़र्ज़ न होता तो फिर उसे ईमान व निफ़ाक़ के दरम्यान फ़र्क़ करने वाली कसौटी क़रार न दिया जाता। यह आयत बताती है कि इस्लाम व कुर्फ़ की कशमकश में जो लोग अपनी जान व माल के साथ इस्लाम की हिमायत करें और अपनी तमाम क़ूव्वत व सलाहियत उसे सरबुलन्द करने की कोशिश में खपा दें वही सच्चे मोमिन है। इसके ठीक विपरीत जो लोग इस कशमकश में इस्लाम का साथ देने से जी चुरायें और बिला मजबूरी उसमें में अपनी जान व माल ख़र्च करने से जी चुरायें वह झूठे मोमिन हैं जिन्हें आख़िरत पर यक़ीन नहीं है और न ख़ुदा के वादों पर। उनके दिलों को शक और संदेह की बीमारी लगी हुई है।

३. ऐन मौक़े पर जिहाद में सम्मिलित न होने और उससे जी चुराने वालों के लिये इर्तेदाद (दीन से फिर जाना) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है।

‘‘जो लोग पीठ फेर गये इसके बाद कि सीधा रास्ता उनको साफ़ मालूम हो गया, शैतान ने उनको चकमा दिया है और उनको दूर–दूर की सुझाई है। यह उस सबब से हुआ कि उन लोगों ने ऐसे लोगों से जो ख़ुदा के उतारे हुये क़ानून को (हसद से) ना पसन्द करते हैं, यह कहा कि बाज़ बातों में हम तुम्हारा कहना मान लेगें और अल्लाह उनकी ख़ुफ़िया बातों को ख़ूब जानता है। फिर उनका क्या हाल होगा जब फ़रिश्ते उनकी जान क़ब्ज़ करते हुए उनके चेहरों और उनकी पीठों पर मारते जाते होंगे और यह सज़ा उस सबब से होगी कि जो तरीक़ा ख़ुदा की नाराज़ी का सबब था यह उसी पर चले और उसकी प्रसन्नता के कामों से नफ़रत करते रहे, इस लिये अल्लाह ने उनके सब काम अकारण कर दिये।’’

इन आयतों में मुनाफ़िक़ों के लिये आख़िरत की सज़ा वही सुनायी गयी है जो मुर्तदों (दीन से फिर जाने वाले) और काफ़िरों की है। जिहाद से जी चुराने और उसमें माल ख़र्च न करने वालों को बहुत सी आयतों में मुनाफ़िक़ क़रार दिया गया है और इस तर्ज़े अमल को उनकी बेईमानी का नतीजा कहा गया है। अगर इन तमाम आयतों के मायने व मतलब से वाक़फ़ियत हासिल करना हो तो सूरह आले इमरान, सूरह निसा, सूरह इन्फ़ाल, सूरह तोबा, सूरह अहज़ाब, सूरह मोहम्मद और सूरह फ़तह का अध्ययन करना चाहिये जैसा कि ऊपर

इशारा गुज़र चुका है निफ़ाक़ की दो बड़ी किस्में हैं, अक़ीदे का निफ़ाक़ और अमल का निफ़ाक़ जो लोग अक़ीदतन मुनाफ़िक़ हों यानी जिनके दिल काफ़िर और ज़बानें मोमिन हों वह वाकई दायरा इस्लाम से ख़ारिज और खुले काफ़िरों से भी बदतर हैं और उनकी सज़ा भी काफ़िरों से सख़्त है। वह जहन्नम के सबसे निचले तबक़े में होंगे और जो लोग सिर्फ़ अमलन मुनाफ़िक़ हों वह दायरा इस्लाम से खारिज नहीं हैं। इस्लाम को सर बुलन्द करने की जद्दो जहद से जान चुराने और उसमें अपना माल ख़र्च न करने वाले दोनों क़िस्म के मुनाफ़ीक़ीन थे और आज भी मौजूद हैं लेकिन इन दोनों का हुक्म अलग-अलग है।

नवीं दलील

इन्सानों और जिनों को अल्लाह की इबादत के लिये पैदा किया गया है। सूरह अल ज़ारिआत में फ़रमाया गया है।

> ''और मैंने जिनों व इन्सानों को इसलिये पैदा किया है कि वह मेरी इबादत करें।'' (अल ज़ारिआत ५६)

अल्लाह तआला पूरी कायनात का ख़ालिक़, मालिक और हाकिम है। यहाँ जो चीज़ भी मौजूद है वह सब उसकी मख़लूक़, मोहताज और मातहत है। और यह बात भी क़ुरआन की आयतों से मालूम है कि कायनात की तमाम चीज़ें अपने ख़ालिक़ व मालिक की इबादत और तसबीह में मशगूल हैं। इन्सान भी अल्लाह का बन्दा और उसका गुलाम है। सवाल यह पैदा होता है

कि अल्लाह ने अपने इस बाइख़्तियार (जो हैवानात व जमादात की तरह मजबूर नहीं है) बन्दे को किस क़िस्म की इबादत के लिये पैदा किया है और वह कौन सी इबादत है जिस का यह मुकल्लफ़ बनाया गया है? आया उस इबादत के मायने यह हैं कि इन्सान अल्लाह तआला की सिर्फ़ इबादत के लिये पैदा किया गया है या इसके मायने यह हैं कि ज़िन्दगी के हर मामले में उसकी इताअत भी उस पर वाजिब और लाज़िम है? इस सवाल का सही जवाब हासिल करना हमारे लिये इन्तहाई ज़रुरी है। क्योंकि अगर हमने किसी ग़लत जवाब पर अमल करके अपने दिलों को मुतमईन कर लिया तो हम अपने मक़सदे तख़लीक़ ही में नाकाम हो जायेगें इसका सही जवाब हम अपनी अक़्ल लड़ा कर हासिल नहीं कर सकते बल्कि उसका सही जवाब हमें वह किताब ही दे सकती है जिसमें ''वमा ख़लक़्तुलजिन्ना वलइन्सा इल्ला लियाअबुदून'' की आयत नाज़िल हुई है। क़ुरआन नाज़िल ही इसलिये हुआ है कि इन्सान को बन्दगी रब की सीधी राह दिखाये और बताए कि वह ''इबादत'' क्या है, जिसके लिये इन्सान पैदा किया गया है। वह हमें बताता है कि इन्सानों से अल्लाह का मुतालबा सिर्फ़ यह नहीं है कि वह उसकी पूजा करें बल्कि यह भी है कि अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में उसकी इताअत करें। वह शुरु ही में हमें यह बता देता है कि अल्लाह ने इन्सान को इस दुनिया में अपना ख़लीफ़ा बना कर भेजा है और ख़िलाफ़त व नियाबत के कामों को अन्जाम

देना उसकी ज़िन्दगी का अहम तरीन फ़रीज़ा (duty) है। वह हमें बताता है कि अल्लाह ने तुम्हारी पूरी ज़िन्दगी के लिये एक दीन दीने इस्लाम भेजा है और उसकी मुकम्मल पैरवी तुम पर लाज़िम है। वह हमें बताता है कि पाँच वक्त की नमाज़ें, रमज़ान के रोज़े, माल की ज़कात और हज तुम पर फ़र्ज़ हैं। वह हमें बताता है कि सूद हराम और व्यापार हलाल है। वह हमें बताता है कि सुअर हराम और बकरी हलाल है। वह हमें बताता है कि ज़िना हराम और निकाह हलाल है, वह हमें बताता कि नाप तौल ठीक रखो उन लोगों के लिये तबाही है, जो अपना हक़ नाप करलें तो पूरा लें और दूसरों का हक़ नाप कर दें तो कम दें, वह हमें हुक्म देता है कि सच्ची गवाही दो चाहे उसकी चोट तुम्हारे क़रीब तरीन रिश्तेदार ही पर क्यों न पड़ती हो। वह हमें हुक्म देता है कि तमाम मामलों व मुक़दमों का फ़ैसला अल्लाह के उतारे हुये क़ानून के मुताबिक़ करो। वह हमें बताता है कि अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के ख़िलाफ़ हुक्म चलाने और फ़ैसला करने वाले काफ़िर, ज़ालिम और फ़ासिक़ हैं। वह हमें हुक्म देता है कि चोरों के हाथ काट लो और ज़ानियों की पीठों पर कोड़े बरसाओ। वह हमें हुक्म देता है अल्लाह के दुशमनों से जिहाद करो, जान से भी और माल से भी। इससे जान चुराना और भागना मुनाफ़िक़ों का काम है। पूरी ताकीद के साथ इस तरह के बीसियों आदेश क़ुरआन में मौजूद हैं, जो हमें बताते हैं कि दीने इस्लाम की मुकम्मल पैरवी ही वह इबादत है, जिसके लिये

इन्सान पैदा किया गया है। इस इबादत के दायरे से इन्सानी ज़िन्दगी का कोई हिस्सा ख़ारिज नहीं है और दीने इस्लाम की मुकम्मल पैरवी ही का नाम अक़ामते दीन है।

सूरह ज़ारियात की आयत ५६ में इन्सान की तख़लीक़ का मक़सद बताया है कि उसके फ़र्ज़ होने में कौन शुब्हा कर सकता है?

इमाम राज़ी रह० ने इस आयत की तफ़सीर में लिखा है कि वह इबादत जिसके लिये जिन्नात और इन्सान पैदा किये गये हैं अल्लाह के हुक्म की ताज़ीम और ख़ुदा की मख़लूक पर मेहरबानी है और ऐसी ताज़ीम जो अल्लाह के लायक़ है, सिर्फ़ अक़्ल से मालूम नहीं हो सकती। इसलिये उसमें शरई एहकाम की इताअत और क़ौल रसूले की पैरवी ज़रुरी है और इसीलिये अल्लाह ने अपने रसूल भेज कर और इबादत की इन दोनों क़िस्मों के तरीक़े वाज़ेह करके अपने बन्दों पर एहसान किया है। उनकी इस तफ़सीर से भी मालूम हुआ कि यहाँ ''इबादत'' सिर्फ़ पूजा और परसतिश के मायने में नहीं है बल्कि इस इबादत के दायरे में अल्लाह के हुक़ूक़ और बन्दों के हुक़ूक़ दोनों दाख़िल हैं और इन्सान इबादत की इन दोनो क़िस्मों का पाबन्द है और यह कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल भेज कर इबादत की इन दोनो क़िस्मों के तरीक़े वाज़ेह कर दिया हैं। इसके मायने भी यही हुऐ कि हमें इस इबादत की तफ़सील जानने के लिये रसूल की ज़िन्दगी और अल्लाह की किताब को सामने रखना चाहिये।

दसवीं दलील

मुसलमानों को उम्मते वस्त (दरम्यानी उम्मत) और ख़ैरे उम्मत बनाने की ज़रुरत और उसका मक़सद। ऊपर की नौ दलीलों से यह बात सामने आती है कि दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब व सरबुलन्द करना, जिसके लिये क़ुरआन ने एक जामेअ इस्तलाह (Term) ''अक़ामते दीन'' इस्तेमाल की है। फ़र्ज़ है और उस दर्जे का फ़र्ज़ है कि इस राह की जद्दो जहद से जी चुराना और उसमें माल ख़र्च करने से हाथ रोकना निफ़ाक़ की निशानी है। यह बात भी तसलीम शुदा है कि हर नबी व रसूल के बाद उनकी उम्मत उस काम जिसके लिये वह भेजे गये हैं, उनकी क़ायम मुक़ाम होती है। इसलिये उम्मते मुस्लिमा अब क़ियामत तक अल्लाह के आख़िरी नबी व रसूल सय्यदना सल्ल० की उस काम में जिसके लिये आप की आमद हुई थी उनकी क़ायम मुक़ाम है लेकिन अब चूँकि न कोई नबी आने वाला है और न कोई किताब नाज़िल होने वाली है, इसलिये क़ुरआन ने उम्मते मुस्लिमा को ख़िताब करके उसका मन्सब बताया है ताकि इस बात में कोई सन्देह बाक़ी न रहे कि अब यही उम्मत क़ियामत तक उस काम की ज़िम्मेदार है जिसके लिये क़ुरआन नाज़िल किया गया है और जिस का अमली नमूना सय्यदना मोहम्मद सल्ल० ने पेश फ़रमा दिया है। इस तरह क़ुरआन का यह स्पष्टीकरण इस बात की एक मुस्तक़िल दलील बन गया है कि यह उम्मत जिसे काम में अपने रसूल क़ायम मुक़ाम

है वह उस पर फ़र्ज़ है और अगर वह उसे छोड़ बैठे तो अपने मक़सदे वजूद ही में नाकाम हो जाएगी। हम यहाँ बहुत संक्षेप में इस सिलसिले की चन्द आयतें पेश करेगें।

१. सूरह बक़रा की आयत १४३ में फ़रमाया गया है।

"और इसी तरह हमने तुम्हें एक बीच की उम्मत बनाया ताकि तुम लोगों पर गवाही देने वाले बनो और रसूल तुम पर गवाही देने वाला बने।"

मौलाना अमीन अहसन इस्लाहीरह० 'उम्मते वस्त' की तशरीह करते हुए फ़रमाते हैं।

"वस्त" के मायने वह चीज़ जो दो तरफ़ों के दरम्यान बिल्कुल बीच में हो। यहीं से उसके अन्दर बेहतर होने का मफ़हूम पैदा हो गया। इसलिये कि जो चीज़ दो किनारों के दरम्यान होगी वह नुक्तये वस्त व एतेदाल (संतुलन) पर होगी और यह उसके बेहतर होने की एक फ़ितरी दलील है। उम्मते मुस्लिमा को "उम्मते वस्त" कहने की वजह यह है कि यह उम्मत ठीक-ठीक दीन की इस बीच राह पर क़ायम है, जो अल्लाह तआला ने ख़ल्क़ की रहनुमाईके लिये अपने नबियों और रसूलों के ज़रिये से खोली है और जो इब्तेदा से हिदायत की असली शाहराह (राजमार्ग) है।"

(तदब्बुरे क़ुरआन जि.१ स.३१८)

उम्मते मुस्लिमा को ‘‘उम्मते वस्त’’ यानी आदिल मोअतदिल और मुतवाज़िन (दरम्यानी और सन्तुलित) बनाने की ज़रुरत और गरज़ यह है।

‘‘ताकि तुम लोगों पर अल्लाह के दीन के गवाह बनो और रसूल तुम्हारे ऊपर अल्लाह के दीन का गवाह बने।’’ (अल बक़रा : १४३)

‘‘यह उम्मतेवस्त यानी दरम्यानी उम्मत के फ़रीज़ये मन्सबी और उसके क़याम की ज़रुरत का बयान है। ऊपर की तफ़सीलात से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो चुकी है कि अल्लाह तआला ने जिन लोगों को रहनुमाई के मन्सब (पद) पर नियुक्त किया था, उन्होंने ख़ुदा के अहद (प्रतिज्ञा) को तोड़ दिया। उसकी शरीयत में तब्दीलियां कर दीं। उसकी सिराते मुस्तक़ीम (सीधा मार्ग) गुम कर दी। उसके निश्चित किये हुये क़िबला से भटक गये और जिन शहादतों के अमीन बनाये गये थे उनको उन्होंने छिपाया। ऐसे हालात में आलमे इन्सानियत की सबसे बड़ी ज़रुरत अगर कोई हो सकती थी तो यही हो सकती थी कि अल्लाह तआला एक ऐसी उम्मत बरपा करे, जो ख़ुदा की सीधी राह पर क़ायम हो, जो अल्लाह के रसूल के ज़रिये से असल दीन की बने और फिर रहती दुनिया तक लोगों के सामने उस दीन की गवाही दे।’’

“रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो, से यह बात वाज़ेह तौर पर निकलती है कि शहादत अलन्नास का जो फ़र्ज़ आप सल्ल० पर बहैसियते रसूल के था आपके बाद बाप की उम्मत तरफ़ मुन्तक़िल (Transfer) हुआ और अब उस उम्मत की यह ज़िम्मेदारी है कि वह हर दौर, हर मुल्क और हर ज़बान में लोगों पर अल्लाह के दीन की गवाही दे। अगर वह इस फ़र्ज़ में कोताही करेगी तो इस दुनिया की गुमराहियों के नतीजे भुगतने में दूसरों के साथ वह भी बराबर के शरीक होगी।”

(तदब्बुरे क़ुरआन जि. १ स. ३२०)

आप सल्ल० ने लोगों पर क़ौल से और अमल से दीने हक़ की जो गवाही दी थी वह उसके किसी एक हिस्से की न थी बल्कि पूरे दीन की थी, पूरे क़ुरआन की थी। वह गवाही आपने मक्का और ताएफ़ की गलियों, मिना व अराफ़ात के मैदानों और जज़ीरतुल अरब से हज के लिये आए हुए गिरोहों और क़बीलों में दी थी और फिर मदीना की मस्जिद नबवी, वहाँ के बाज़ारों और बद्र, उहद, ख़ैबर, हुनैन और तबूक के मैदानों में भी दी थी। हुज़ूर सल्ल० ने वह गवाही ज़िन्दगी के किसी एक भाग में नहीं बल्कि उसके तमाम हिस्सों में दी थी। इसलिये आपकी उम्मत पर उसी वुसअत व जामियत (परिपूर्णता) के साथ दीन हक़ की गवाही फ़र्ज़

है। शहादते हक़ (हक़ की गवाही) के जिस अज़ीम मन्सब पर उम्मत मुस्लिमा सरफ़राज की गयी है, उसके मफ़हूम को सूरह हज के आख़िरी की दो आयतों ने पूरी तरह निर्धारित कर दिया है।

> ''ए ईमान वालों! रूकू और सज्दा करो और अपने रब की बन्दगी करो और नेकी करो ताकि तुम कामयाब हो जाओ और अल्लाह की राह में जिहाद करो जैसा कि जिहाद करने का हक़ है। उसने तुम्हें अपने काम के लिये चुन लिया है और दीन में उसने तुम पर कोई सख़्त मुश्किल नहीं डाली। दीन तुम्हारे बाप इब्राहिम का। उसने तुम्हारा नाम मुस्लिम रखा पहले भी और इस क़ुरआन में भी, ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह बनो। तो नमाज़ क़ायम करो, ज़कात दो और अल्लाह से जुड़ जाओ। वह तुम्हारा आक़ा है। बेहतर आक़ा और बेहतर मददगार।''
>
> (हज : ७७,७८)

''ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो'' से पहले जो कुछ कहा गया है और उसके बाद जो कुछ इरशाद हुआ है उसके दरम्यान यह टुकड़ा इस तरह आया है कि ख़ुद पुकार कर कह रहा है कि उम्मते मुस्लिमा को शहादते हक़ (हक़ की गवाही) का जो मन्सब सुपुर्द किया गया है और अल्लाह ने जिस काम के लिये इस उम्मत का चयन किया है। वह पूरे दीन

की अक़ामत का फ़रीज़ा है, राहे ख़ुदा में जिहाद का फ़रीज़ा है, ऐसा जिहाद जिसका हक़ अदा कराया गया हो।

"मुस्लिम" का लक़ब उसको इसलिये दिया गया है कि वह लोगों के सामने हक़ की गवाही पेश करे। पहली आयत में रुकू व सजूद, बन्दगीये रब और अमले ख़ैर का हुक्म दिया गया है और ख़ास से आम की तरफ़ कलाम को इस तरह तरक़्क़ी दी गयी है कि पूरा दीन उसके दायरे में आ गया और पूरे दीन पर उस वक्त तक अमल मुम्किन नहीं, जब तक दीन बातिल का ज़ोर न तोड़ दिया जाए। इसलिये दूसरी आयत की इब्तेदा ही में जिहाद का हुक्म दिया गया। चौतरफ़ा जिहाद बहरहाल एक कठिन चीज़ है। इसलिये चन्द बातें ऐसी फ़रमाई गयीं, जो बन्दा मोमिन के लिये इस कड़वी चीज़ को मीठी और मज़ेदार बना देती हैं। पहली बात "हुवा अजतबाकुम" के टुकड़े में कही गयी है यानी किसी और ने नहीं बल्कि खुद तुम्हारे आक़ा व मौला ने तमाम इन्सानों में से तुम लोगों को इस ख़िदमत के लिये चुन लिया है। यह सुनते ही इताअत गुज़ार और आक़ा से मुहब्बत करने वाला गुलाम खुशी से झूम उठता है और कोई मुश्किल उसे मुश्किल नज़र नहीं आती लेकिन मेहरबान आक़ा की तरफ़ से मुहब्बत से भरी हुई आवाज़ आती है। "वमा ज़अला अलैकुम फिद्दीनि मिन हरजिन" "दीन में उसने

तुम पर कोई ऐसी मुश्किल नहीं डाली जो ‘‘हर्ज’’ की हद तक हो’’। यह दूसरी बात है, जिसने राहे ख़ुदा में जिहाद और फ़रीज़ों की तामील को आसान बनाया। तीसरी बात यह कही गयी कि यह तुम्हारे बाप इब्राहीम अलैह० का अक़ीदा व मज़हब और दीन का आईन है। ज़रा देखो तो कि तुम्हारे बाप इब्राहीम अलैह० राहे ख़ुदा में जिहाद के किस दर्जे पर पहुँचे और हक़ के लिये कौन सी क़ुरबानी है, जो उन्होंने नहीं दी। जब हक़ीक़त यह है तो फिर नेक बेटों पर बाप की विरासत और उनकी रविश क्यों गिराँ गुज़रे। कुछ मज़ीद ताकीद के लिये फ़रमाया कि वह अल्लाह ही है, जिसने तुम्हें ‘‘मुस्लिम’’ के बाइज़्ज़त लक़ब से नवाज़ा है ताकि रसूल तुम पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो। गोया इस उम्मत का नाम ‘‘मुस्लिम’’ रखने की ग़रज़ यही शहादत अलन्नास (लोगों पर गवाही) है और उसके बाद फ़रमाया कि नमाज़ क़ायम करो, ज़कात दो और अल्लाह पर भरोसा करो उससे वाबस्ता हो जाओ। अक़ामते सलात (यानी नमाज़ का क़ायम करना) और ईतायें ज़कात पूरे दीन का विषय भी है। तज़किया नफ़्स की बेहतरीन तदबीर भी है और राहे हक़ की मुश्किलात में क़ूव्वत का ख़ज़ाना भी है। यही वजह है कि नमाज़ और ज़कात के बाद ‘‘एतेसाम बिल्लाह’’ का हुक्म दिया गया और बात उस पर ख़त्म की गयी कि कि अल्लाह ही तुम्हारा आक़ा व मौला है यानी जब तक तुम्हारा ताल्लुक़ अल्लाह से मज़बूत न हो तुम उस पर भरोसा

न करो। उससे मदद तलब न करो और वह जब तक तुम्हारी मदद न करे तुम शहादते हक़ और अक़ामते दीन का फ़रीज़ा अन्जाम नहीं दे सकते। यह जो कुछ अर्ज़ किया गया उल्माये कराम की तफ़सीरें उसी की तरफ़ रहनुमाई करती हैं लेकिन लम्बा हो जाने के ख़ौफ से हम उनकी इबारतें यहाँ नक़ल नहीं कर रहे हैं। सूरह बक़रा और सूरह हज के समान अर्थ वाली दो आयतें सूरह आले इमरान में हैं।

> ''और तुम में एक जमाअत ऐसी होना ज़रुरी है कि (दूसरों को भी) ख़ैर की तरफ़ बुलाया करें और नेक काम करने को कहा करें और बुरे कामों से रोका करें और ऐसे लोग (आख़िरत में) पूरे कामयाब होगें।'' (आले इमरान : ११०)
>
> ''ऐ उम्मते मोहम्मदिया! तुम लोग अच्छी जमाअत हो कि वह जमाअत (आम) लोगों के लिये ज़ाहिर की गयी है। तुम लोग नेक काम को बतलाते हो और बुरी बातों से रोकते हो और (ख़ुद भी) अल्लाह पर ईमान लाते हो।''

यह दोनों आयतें मिल कर एक दूसरे की वज़ाहत व तकमील करती हैं और एलान करती हैं कि अब दुनिया की इमामत उम्मते मुस्लिमा के सुपुर्द कर दी गयी है।

‘‘उम्मते मुस्लिमा आख़िरी दीनी पैग़ाम रखती है और यह पैग़ाम उसके सारे आमाल और क्रिया-कलाप यानी ज़िन्दगी पर हावी है। उसका मन्सब (पद) क़ियादत व रहनुमाई (leadership) और दुनिया की निगरानी व देख-भाल का मन्सब है। क़ुरआन मजीद ने बहुत ही क़ूव्वत और वज़ाहत के साथ एलान किया है।

‘‘कुनतुम ख़ैरा उम्मतिन’’ (ए ईमान की दावत देने वाले) तुम तमाम उम्मतों में बेहतर उम्मत हो जो लोगों (की हिदायत व इस्लाह) के लिये वजूद में आयी है। तुम नेकी का हुक्म देने वाले, बुराई से रोकने वाले और अल्लाह पर सच्चा ईमान रखने वाले हो। दूसरी जगह कहा गया है।

‘‘वकाज़ालिका ज़अलनाकुम’’ और इसी तरह तो हमने तुम्हें उम्मते वस्त (दरम्यानी उम्मत) बनाया है ताकि तुम दुनिया के लोगों पर गवाह हो। इसलिये इसका सवाल ही नहीं पैदा होता कि उस उम्मत का मुकाम क़ाफ़िले के पीछे और चापलूसों की पंक्ति में हो और वह दूसरे के सहारे ज़िन्दा रहे और क़ियादत व रहनुमाई हुक्म व मनाही और दीनी व फ़िक्री आज़ादी के बजाए दूसरों की पैरवी और हार मान लेने पर राज़ी

और मुतमईन हो''। (मौलाना सय्यद अबूल हसन अली नदवी मुस्लिम मुमालिक में इस्लामियत और मग़रिबयत की कशमकश स० २०१, २०२)

आयत ११० के तहत मौलाना अमीन अहसन इस्लाही लिखते हैं।

''ख़ैरे उम्मत में इशारा उस हक़ीक़त की तरफ़ है कि अब दीन की सही शाहराह (राजमार्ग) पर तुम ही हो। अल्लाह ने जो दीन नाज़िल फ़रमाया था, अहले किताब ने कज-पेच की राहें निकाल कर असल दीन को गुम कर दिया। अब इन्सानों की रहनुमाई के लिये ख़ुदा ने तुमको ख़ड़ा किया है। इसी हक़ीक़त को सूरह बक़रा के अल्फ़ाज़ से स्पष्ट किया गया है : वहाँ हम लिख चुके हैं कि यह उम्मत चूँकि ठीक नुक्ते एतेदाल (सन्तुलित) और वस्त शाहराह (दरम्यानी राह) पर है। इस वजह से यह ख़ैर उम्मत है।''

चन्द सतरों के बाद लिखते हैं:

''ज़ुल्म के एतबार से यह आयत जैसा कि ऊपर इशारा कर आये हैं। इस उम्मत के मन्सबे इमामत का एलान है।'' (तदब्बुरे क़ुरआन जि० १ स० ७६२, ७६३)

इन चार आयतों से पूरी क़ूव्वत और वज़ाहत के साथ यह मालूम हो जाता है कि इस उम्मत के पैदा किये जाने और उसके उम्मते वस्त और ख़ैर उम्मत बनाए जाने की ज़रुरत और मक़सद

ही यह है कि यह उसी व्यापकता और परिपूर्णता के साथ दीन हक़ की शहादत दे जैसी सय्यदना मोहम्मद सल्ल० ने दी थी। इस काम में अब यह क़ियामत तक अपने रसूल की क़ायम मुक़ाम है।

रसूल सल्ल0 और सहाबा रज़ि0 को अमल की दलील

जब ख़ुद क़ुरआन मजीद से किसी काम का फ़र्ज़ व वाजिब होना साबित हो जाता है तो उसके बाद हदीसे नब्वी में हमें उसकी अमली वज़ाहत और व्याख्या मिलती है। सय्यदना मोहम्मद सल्ल० ने आग़ाज़े नबूअत से वफ़ात तक और आप के सहाबा कराम रज़ि० ने आप के साथ और आप के बाद जिस तरह फ़रीज़ये अक़ामते दीन अन्जाम दिया है और जिस तरह सर धड़ की बाज़ी लगा कर दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब करने की जद्दो जहद की है वह हदीसों सीरत की किताबें और तारीख़े इस्लामी के दफ़्तरों में मौजूद है। इस साहित्य का अध्ययन करने वाले और उससे दिलचस्पी रखने वाले लाखों मुसलमान अहले इल्म ही नहीं बल्कि हज़ारों ग़ैर मुस्लिम अहले इल्म भी उससे वाक़िफ़ हैं। अगर हम दोचार हदीसों और दो चार वाक़ियात भी यहाँ नक़ल करें तो यह किताबचा एक किताब की शक्ल इख़्तियार कर लेगा। हम संक्षेप में यहाँ सिर्फ़ इतना कह सकते हैं कि अल्लाह के रसूल सल्ल० और उनके साथियों का बे मिसाल अमल भी रहती दुनिया तक के लिये यह दलील फ़राहम करता है कि आपने और आपके साथियों ने क़ुरआन की आयात से यही समझा था कि दीने हक़ को बातिल दीनों पर ग़ालिब करना और दीने इस्लाम को बरपा

करना उन पर फ़र्ज़ और उनका मक़सदे हयात है। इसके अलावा सय्यदना मोहम्मद सल्ल० और आप के ख़ुलफ़ाए राशिदीन का उसवये हस्ना (तरीकये ज़िन्दगी) हमारे सामने वह सीधी राह खोलता है, जिस पर चल कर हम अक़ामते दीन के फ़र्ज़ को अदा कर सकते हैं। इस किताबचे से हमारा मक़सद सिर्फ़ यह साबित करना था कि अक़ामत दीन फ़र्ज़ है और हम पर यह ज़िम्मेदारी अल्लाह रब्बुलआलिमीन ने डाली है और वही उसका हिसाब लेगा।

आख़िरी बात

आख़िर में इस्लामी शरीयत के एक तसलीम शुदा उसूल की तरफ़ इशारा कर देना भी ज़रुरी है। वह तसलीम शुदा उसूल यह है कि अल्लाह तआला ने अपने एहकाम के सिलसिले में बन्दे की असल ज़िम्मेदारी यह क़रार दी है कि वह उसे अन्जाम देने की कोशिश करे और इस कोशिश में अपनी क़ुदरत व ताक़त की हद तक कोताही न करे। अगर उसने ऐसी कोशिश करली तो अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जायेगा। शरीयत ने जो ज़िम्मेदारियां डाली हैं उनमें से कुछ ऐसी हैं जिन का ताल्लुक़ हर शख़्स की अपनी ज़ात से होता है यानी वह ख़ुद मुकर्रर होता है कि इस फ़र्ज़ पर अमल करके उसे अमल में लाए। मसलन पन्ज वक़्ता नमाज़ की अदाएगी हर आक़िल व बालिग़ मुसलमान पर फ़र्ज़ है। इस तरह के फ़राएज़ में भी सबसे पहली चीज़ जो मुसलमानों पर वाजिब होती है यह है

कि वह उन्हें अदा करने का एहतमाम और उसके लिये कोशिश करे। अगर उसने कोशिश कर ली और किसी ऐसी रुकावट की वजह से जिस पर उसे क़ाबू न था उस फ़र्ज़ को अदा न कर सका तो उसकी ज़िम्मेदारी पूरी हो गयी और वह आख़िरत की पूछ-गच्छ से बच गया। इस फ़र्ज़ को अदा करने का अज्र भी उसे मिल जायेगा। फ़र्ज़ कीजिये कि कोई मुसलमान किसी वक़्त की नमाज़ के लिये पूरी तरह तैयार हो कर घर से निकला कि जमाअत से अदा करे लेकिन रास्ते में किसी हादसे का शिकार हो कर दुनिया से चल बसा इस सूरत में न सिर्फ़ यह कि वह अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो गया बल्कि उस वक़्त की नमाज़ का अज्र भी उसे मिल गया। हालाँकि अमलन उसने वह नमाज़ नहीं पढ़ी।

कुछ फ़रीज़े (Duties) ऐसे हैं जिनका ताल्लुक़ दूसरों से होता है उस क़िस्म के फ़रीज़ों में किसी मुसलमान की ज़िम्मेदारी यह नहीं होती कि वह उस चीज़ को वजूद में ले आये बल्कि सिर्फ़ यह होती है कि उसे वजूद में लाने की कोशिश करे। उसकी स्पष्ट मिसाल अल्लाह का यह हुक्म है।

> ''ऐ मोमिनों! अपने आप को और अपने घर वालों को दोज़ख़ की आग से बचाओ।'' (अल तहरीम : ६)

यह आयत हर मुसलमान को इसका भी ज़िम्मेदार क़रार देती है कि वह अपनी बीवी और अपनी औलाद को भी जहन्नम की आग से बचाए। सोचिये इस फ़रीज़े और इस ज़िम्मेदारी का मतलब क्या हो सकता है? क्या उसका यह मतलब लिया जा

सकता है कि अल्लाह ने हर मुसलमान को ज़िम्मेदार क़रार दिया है कि वह अपनी बीवी और औलाद के दिलों में हिदायत का नूर डाल कर उन्हें ख़ुदा का फ़रमाँ बरदार बना दे? ज़ाहिर है कि यह मतलब नहीं लिया जा सकता। क्योंकि यह ज़िम्मेदारी तो अल्लाह ने अपने रसूलों पर भी नहीं डाली है। हज़रत नूह अलैह सलाम का बेटा और उनकी बीवी दोनों ही अड़े रहे और अज़ाबे इलाही में ग़र्क़ हुऐ। हज़रत लूत अलैह० की बीवी बग़ावत पर डटी रही और अज़ाब में गिरफ़्तार हुयी। मालूम हुआ कि सूरह तहरीम की आयत ६ में जो ज़िम्मेदारी डाली गयी है वह सिर्फ़ इतनी है कि हर मुसलमान अपनी बीवी बच्चों की इस्लाह के लिये पूरी कोशिश करे। अगर उसने कोशिश करली तो वह ज़िम्मेदारी से बरी हो गया। चाहे उनकी इस्लाह हुई हो या न हुई हो। यहाँ यह मुख़्तसर इशारा इसलिये किया गया है कि हम पर दीने हक़ को ग़ालिब करने और उसको क़ायम करने की जो ज़िम्मेदारी डाली गयी है वह यही है कि हम उसके लिये पूरी कोशिश करें। अगर हमने पूरी कोशिश करली तो ज़िम्मेदारी से बरी हो जायेगें और अगर हमने कोशिश ही नहीं की और इस जद्दो जहद में हिस्सा ही नहीं लिया तो क़ियामत में पकड़े जायेगें और हमसे सख़्त पूछ गच्छ की जायगी।